Chapter-1

# अध्याय : 1

# विषय - प्रवेश

# अध्याय : 1

## विषय - प्रवेश

साहित्य मानव-समाज की सांस्कृतिक विरासत है । साहित्य के अभाव में कोई भी प्रदेश या भू-भाग विशेष राष्ट्र की संज्ञा को प्राप्त नहीं होता । यहाँ तक कि आदिम से आदिम जातियोंका भी अपना साहित्य होता है, चाहे वह अलिखित ही क्यों न हो । उनकी सभ्यता और संस्कृति लोक-साहित्य के भावोच्छ्वासों से तरंगायित होती है । विश्व के समृध्दतम् देशो में भी अभी तक भारत के लिए एक विशिष्ट आकर्षण पाया जाता है, क्योंकि भारतीय सभ्यता और संस्कृति के उद्घोषक वेद, उपनिषद, रामायण, महाभारत, अभिज्ञान शाकुंतलम् मेघदूत, उत्तर-रामचरित जैसे महानतम् साहित्यिक ग्रंथोंकी सांस्कृतिक विरासत हमें प्राप्त है । इस प्रकार साहित्य देशके इतिहास और संस्कृति का निर्माण करता है । प्रत्येक युगमें युगीन आवश्यकताओं के अनुसार साहित्य के नये - नये रूप आकार लेते है । पुनरूत्थानोत्तर औद्योगिक क्रांति से विकसित पूंजीवादी व्यवस्थाने जीवन की जटिलता में शतश: वृद्धि की तब मानव-जीवन एवं समाज जीवनकी जटिलताको उसके समग्र रूपमें प्रस्तुत करने के लिए किसी नये काव्य-रूप की खोज शुरू हुई, जिसके परिणाम स्वरूप उपन्यास हमारे सामने आया ।

उपन्यास एक ऐसी विधा है, जो मानव को उसकी सम्पूर्णताके साथ ग्रहण करते हुए उसकी अनुभूतियों को अभिव्यक्त करनेकी संनिष्ठ चेष्टा करती है ।[1] कदाचित इसीलिए राल्फ फोक्स महोदयने उपन्यासको आधुनिक युगका महाकाव्य कहा है । वास्तवमें उसका काम इस नये युगके नये मानव की वास्तविकताओं और समस्याओंको प्रस्तुत करना है, जो आधुनिक सभ्यता के साथ उत्पन्न हुई हैं । यही कारण है कि इस विधाको हम आज अपने जीवन के अधिक सन्निकट एवं संविद्ध रूपमें पाते हैं । ठीक यहीं पर वह अपने "उपन्यास" नामको भी सार्थक करती है ।[2]

आधुनिक युगके समर्थ एवं जागरूक आलोचक आचार्य रामचन्द शुक्ल का ध्यान भी इस विधा की ओर गया था । उपन्यास - विषयक उनके विचार यहाँ उल्लेखनीय हैं -- "मानव जीवन के अनेक रूपोंका परिचय कराना उपन्यासका काम है । यह उन सूक्ष्म से सूक्ष्म घटनाओंको प्रत्यक्ष करनेका यत्न करता है जिनसे मनुष्यका जीवन बनता है और जो इतिहास आदिकी पहुँच के बाहर हैं । बहुत से लोग उपन्यासका आधार शुद्ध कल्पना बतलाते हैं । पर उत्कृष्ट उपन्यासोंका आधार अनुमान शक्ति है, न कि केवल कल्पना । तोता मैना का किस्सा और तिलस्म ऐयारी की कहानियाँ निस्संदेह कल्पना की क्रीड़ा है और असत्य है, पर स्वर्णलता, दुर्गेश नन्दिनी, बंग विजेता, जीवन सन्ध्या, बड़ाभाई आदि के ढंग के गार्हस्थ और ऐतिहासिक उपन्यास अनुमान मूलक और सत्य है, उच्च श्रेणी के उपन्यासों में वर्णित छोटी-छोटी घटनाओं पर यदि विचार किया जाय तो जान पड़ेगा कि वे यथार्थ में सृष्टि के असंख्य और अपरिचित व्यापारोंसे छाँटे हुए नमूने हैं । xx उनका आधार सत्य पर है, उन्हें असत्य नहीं समझना चाहिए ।"[3]

तात्पर्य यह कि उपन्यास औद्योगिक क्रांति से विकसित एवं संवर्द्धित इस नयी समाज रचना की नाना जटिलताओं को उसके यथार्थ-सत्य रूपमें प्रकट करनेवाली एक साहित्यिक विधा है ।

उपन्यास : एक नयी विधा

उपन्यास की गणना कथा-साहित्य के अंतर्गत होती है और भारतीय कथा-साहित्य अपने प्राचीन रूपमें सर्वथा समुन्नत एवं विकसित रूप मे उपलब्ध होता है । भारतीय साहित्यके सबसे प्राचीन रूप वेद, ब्राह्मण, उपनिषद आदिमें तथा हितोपदेश, पंचतंत्र, वैताल पंचविंशती, कथा सरित्सागर जैसे उपदेशात्मक ग्रंथों में अनेक कथाएँ मिलती हैं । "दशकुमार चरित", "कादम्बरी" और "वासवदत्ता" प्रभृति प्रेमाख्यानक आख्यायिकाएँ भी कुछ अंशों में हिन्दी के प्रारंभिक उपन्यासोंसे मिलती-जुलती हैं । वस्तुत: इसीलिए किशोरीलाल गोस्वामीने हिन्दी उपन्यासको पश्चिम की देन न मानकर, इन आख्यायिकाओं से आविर्भूत माना है ।[4] अत: स्वयं किशोरीलाल गोस्वामी में अपने उपन्यासों को आख्यायिका का रूप देनेका एक प्रयास मिलता है । उनके मतानुसार "उत्तरोत्तर आश्चर्यजनक एवं कुछ छिपी हुई कथा को क्रमश: समाप्तिमें स्फुरित"[5] करना ही उपन्यास की मुख्य प्रवृति है । यही प्रवृति आख्यायिकाओं में भी मिलती है । यहाँ डॉ॰ गणेशन का यह मत ध्यातव्य है कि "वस्तुत: गोस्वामी के उपन्यास आख्यायिका के जितने निकट हैं, उपन्यास से उतने ही दूर हैं । आधुनिक उपन्यासोंका रूप इससे भिन्न है । प्रेमचंद और परवर्ती उपन्यासकारोने आख्यायिकाओं से कुछ भी ग्रहण नहीं किया । उन्होंने या तो पाश्चात्य उपन्यासोंकी प्रवृत्तियों को अपनाया या अपने स्वतंत्र चिन्तन से काम लिया ।"[6] वस्तुत: ध्येय, दृष्टिकोण और

शिल्पकी दृष्टि से वर्तमान उपन्यास उस पुराने कथा-साहित्य एवं आख्यायिकाओं से सर्वथा भिन्न है ।

प्रेमचन्द - पूर्व युगमें भी बालकृष्ण भट्ट लाला श्रीनिवास, मन्नन द्विवेदी, पण्डित श्रद्धाराम फुल्लौरी प्रभृति उपन्यासकारों में उपन्यास विषयक यह नया दृष्टिकोण ही मिलता है । वस्तुत: इन उपन्यासकारोंको हम प्रेमचन्द के पुरोगामी मान सकते हैं । किशोरीलाल गोस्वामी के उपन्यास रम्याख्यानोंकी कोटि में आ सकते हैं । बाबू देवकी नंदन खत्री के उपन्यास पाठक को कल्पना का स्वैरविहार करा सकते हैं । वे कल्पनाश्रित हैं, सत्याश्रित नहीं । अस्तु, हिन्दी उपन्यास के प्रारंभिक कालकी दृष्टि से उनका ऐतिहासिक महत्व हो सकता है, किन्तु वे उपन्यास को कोई नयी दिशा, चिंतन नहीं देते, बल्कि औपन्यासिक विकास में एक गतिरोध ही पैदा करते हैं । अत: विकास क्रम की दृष्टि से प्रेमचन्द तथा प्रेमचन्द परवर्ती उपन्यासकार बालकृष्ण भट्ट, मन्नन द्विवेदी, पंडित श्रद्धाराम फुल्लौरी, लाला श्रीनिवासदास आदि से ही जुडते हैं । लाला श्रीनिवासदास ने "परीक्षा गुरू" की भूमिका में उसे एक "नयी चाल की पुस्तक" बताया है -- "अपनी भाषा में अब तक वार्तारूपी जो पुस्तकें लिखी गयी हैं उनमें अक्सर नायक-नायिका वगैरह का हाल ठाठ से सिल सिलेवार (यथाक्रम) लिखा गया है, जैसे कोई राजा, बादशाह, शेठ-साहूकार का लड़का था, उसके मनमें इससे यह रूचि हुई है और उसका यह परिणाम निकला, ऐसा सिल सिला (यहाँ) कुछ मालूम नहीं होता । लाला मदन मोहन एक अंग्रेजी सोदागरकी दूकान में असबाब देख रहे हैं । लालाब्रज किशोर, मुंशी चुन्नीलाल और मास्टर शंभुदयाल उनके साथ हैं । इनमें मदन मोहन कौन, ब्रजकिशोर कौन, चुन्नीलाल कौन और शंभुदयाल कौन है । इनका स्वभाव कैसा है । परस्पर

सम्बन्ध कैसा है ? हरेक की हालत क्या है ? यहाँ इस समय किस लिए इकट्ठे हुए हैं ? ये बातें पहले से कुछ भी नही बताई गई । हाँ, पढ़नेवाले धैर्य से पुस्तक पढ़ लेंगे तो अपने-अपने मौके पर सब भेद खुलता चला जायेगा और आदि से अन्त तक सब मेल हो जाएगा ।"[7]

वस्तुत: लाला श्रीनिवासदास एक बहु पठित व्यक्ति थे और उन्होंने स्वयं स्पेक्टेटर, लार्ड बेकन, गोल्डस्मिथ, विलियम कूपर, आदि अंग्रेजी लेखकों से सहायता लेनेका उल्लेख किया है ।[8] अस्तु, यह कहा जा सकता है कि उपन्यास कथा-साहित्यका प्रकार होते हुए भी अपने नये रूपबन्ध के कारण उस पुराने कथा-साहित्यसे एक पृथक सत्ता रखता है ।

अपने जन्म-स्थान योरोप में भी यह साहित्य-रूप अधिक पुराना नहीं है । वहाँ उसका जन्म पुनरुत्थान काल के बाद हुआ । स्वयं फिल्डींग महोदय जो उनके जनकों में से एक हैं, उसके स्वरूप के बारे में कहते हैं कि मैं इस क्षेत्रमें स्थापक होने के नाते उसे कोई भी रूप प्रदान कर सकता हूँ ।[9]

यह निर्दिष्ट हो चुका है कि औद्योगिक क्रांति का उद्भव सर्वप्रथम योरोप में हुआ, अत: उपन्यास (Novel) का जन्म भी सर्वप्रथम वहीं हुआ । योरोप, अमरिका, रूस होते हुए यह "नोवेल" उन्नीसवी शताब्दी के उतरार्द्ध में भारत में आया । हमारे यहाँ उपन्यास का उदभव सर्वप्रथम बंगला भाषामें हुआ क्योंकि इसी क्षेत्र पर अंग्रेजोंका अधिकार सर्वप्रथम हुआ । अत: अंग्रेजीका प्रभाव भी सर्वप्रथम यहीं परिलक्षित होता है । टेकचंद ठाकुर कृत "आलालेर घरेरदुलाल" (सन् 1857) बंगला का प्रथम उपन्यास माना जाता है । उसके कुछ समय बाद उसी वर्ष बाबा पदमनजी कृत "यमुना पर्यटन" मराठीका प्रथम उपन्यास उपलब्ध होता है । सन् 1866 में नंदशंकर तुलजाशंकर मेहताका

गुजराती का उपन्यास "करणघेलो" मिलता है । पंडित श्रद्धाराम फुल्लौरी कृत हिन्दी का प्रथम उपन्यास "भाग्यवती" सन् 1877 में उपलब्ध होता है ।[10] अे॰ के॰ गर्नी द्वारा प्रणीत उपन्यास "कामिनीकांतर चरित्र" असमिया भाषा का प्रथम उपन्यास माना जाता है । आर्चडीकन के॰ कोशिकृत "पुलेली कुचु" (सन् 1882) मलयालम का प्रथम उपन्यास माना जाता है जिसमे ज्ञातिप्रथा एवं मूर्ति पूजा पर कठोर प्रहार किया गया है । उसी प्रकार वेदनायकम् पिल्लेकृत "प्रताप मुदलियर चरितम्" (सन् 1869) और कोक कोंडा वेंकट रत्नम् पन्तुलु कृत "महाश्वेता" (सन् 1867) क्रमश: तमिल एवं तेलुगु के प्रथम उपन्यास हैं । उडिया में भी लगभग इसी समय (सन् 1878 के आसपास) उपन्यास मिलते है ।[11] तात्पर्य यह कि प्राय: सभी भारतीय भाषाओं में उपन्यास उन्नीसवी शताब्दी के उतरार्द्ध से मिलते हैं और उसकी आयु अभी लगभग सौ वर्ष की हुई है ।

प्राचीन कथा-साहित्यमें जहाँ घटना वैचित्र्य उपलब्ध होता है, वहाँ इस नये कथा-साहित्यमें पात्र-वैचित्र्य मिलता है । घटना के स्थान पर पात्र के मनोगत प्रभावोंको रूपायित करने में लेखक का विशेष ध्यान रहता है । प्रेमचन्दने बहुत पहले लिख दिया था कि आधुनिक उपन्यास की आधारशीला मनोविज्ञान है ।[12] उपन्यास की परिभाषामें भी उन्होंने उपन्यास लेखक का उदेश्य मानव-चरित्रों का प्रकाशन और उसकी विशेषताओं और विचित्रताओंका निरूपण ही बताया है ।[13] उपन्यास का कथानक भी कार्य-कारण श्रृंखला में बँधा हुआ होता है, अत: उसकी सूक्ष्म से सूक्ष्म घटना भी घटना भी किसी-न-किसी कारण पर आधारित होती है ।

उपन्यास आधुनिक वैज्ञानिक एवं बुद्धिवादी युगकी देन है । अत: उसके कथा-विन्यास में भी बुद्धि एवं विज्ञानका योग मिलता है । पहले के कथा-साहित्यमें कथाकार जो कुछ भी कहता था, श्रोता या पाठक दिग्मूढ़ होकर उसे सुन या पढ़ लेते थे । "क्यों" और "कैसे" जैसे प्रश्न उनके सम्मुख उपस्थित नहीं होते थे, परंतु आजका बुद्धिवादी मनुष्य प्रत्येक बातको बुद्धिकी कसौटी पर कसता है । आजके कथा-साहित्यमें रामनाम से पत्थर नहीं तैर सकते, हनूमान उड़कर सजीवनी बूटी नहीं ला सकते । इन प्रागैतिहासिक घटनाओंको आजका उपन्यास बुद्धि-ग्राहय बनाकर रखेगा । डॉ॰ नरेन्द्र कोहली ने राम-कथाको लेकर "दीक्षा", "अवसर", "संघर्ष की ओर" तथा "युद्ध" नामक उपन्यास लिखे हैं । "दीक्षा" की समालोचना करते हुए डॉ॰ विजयेन्द्र स्नातक ने कहा है कि "लेखकने रामकथाको नया सन्दर्भ, नई जमीन, नई चिन्तन, नई सूझ-बूझ से जीवन्त बनाने में कोई कसर उठा नहीं रखी है । यही कारण है "दीक्षा" अत्यन्त रोचक, पठनीय और स्पृहणीय रचना बन गई है ।" यहाँ अनेक मिथक-कल्पनाओं को लेखकने खराद पर चढ़ाकर आधुनिक संदर्भ के साथ प्रस्तुत किया है -- "हमारे सारे मिथकों में महान शस्त्रों को देनेवाले शिव हैं ...... निश्चित रूपसे वे एक विकसित शस्त्रशाला ( Ordinance Factory ) के प्रतीक हैं । अत: यह शिव धनुष भी कोई विचित्र यंत्र ही होना चाहिए, जिसे सीरध्वजने युद्ध में प्रयुक्त नहीं किया और शोभा की वस्तु बना दिया, जिसे सैंकडों मनुष्य और पशु खींचकर रंग-स्थली में लाते हैं और पसीना-पसीना हो जाते हैं । मैंने शिव धनुष्को, आधुनिक टैंक जैसे किसी यंत्र के रूपमें स्वीकार किया है । xxx राम-रावण के अंतिम युद्ध तक देवताओं और राक्षसों द्वारा, शिव से शस्त्रास्त्र प्राप्त करते रहने की होड़

लगी रहती है -- जैसे आजके युगमें, छोटे देश रूस तथा अमरीका जैसी महाशक्तियों से शस्त्र मॉंगते ही रहते हैं ।"[14]

पुराने कथा-साहित्यमें कई बार वातावरण तत्वका सर्वथा लोप होता था । भौगोलिक वातावरण भी नाम-मात्रको मिलता था । कई बार तो "एक विस्मृत देशे" से ही काम चलाया जाता था, जबकि वातावरण या देशकाल उपन्यासका एक मुख्य तत्व माना जाता है । उसके कारण ही उपन्यासका वस्तु विश्वसनीय बनता है । वस्तुत: वातावरण वह फ्रेम है जिसमें उपन्यास के कथानक रूपी फोटो को स्थित किया जाता है । प्रसिद्ध रूसी औपन्यासिक दोस्तयोवस्की ने एक स्थान पर लिखा है कि "पात्र इतने यथार्थ हों कि हम उनमें अपने आपको रख सकें और वातावरण इतना यथार्थ हो कि हम उसमें चल फिर सकें ।"[15]

प्राचीन कथा-साहित्य के पात्र भी प्राय: अत्यधिक वर्गीकृत होते थे । राजाओं में प्राय: भोज, उदयन, विक्रम आदि रहते थे । अन्य पात्रों के कई बार नाम ही नहीं होते थे, तो इसके विपरीत कई बार पशु-पक्षियों तक को नाम दिया जाता था, यथा-चित्रग्रीव कबूतर, हीरामन शुआ आदि । आजके उपन्यासमें पात्रके व्यक्तित्व की जो गहरी मॉंग की जाती है उसका उस पुराने कथा-साहित्यमें बिलकुल छेद उड़ जाता था । कथा-वृत्त भी प्राय: राजा--रानियों, भूत-प्रेतों, परियों और अजीबो गरीब चमत्कारिक घटनाओंको लेकर रचे जाते थे । जबकि आजके कथा-साहित्यके केन्द्र में है मनुष्य । यदि किसी ऐतिहासिक उपन्यास में राजा-महाराजा के वृत्त को लिया जाता है तो वहॉं भी लेखक का प्रयास उसे अधिक से अधिक मानवीय - संस्पर्श देनेका ही

रहता है । आजके उपन्यासमें होरी §गोदान§, सूरदास §रंगभूमि§, हसनअली §पत्थर-अल-पत्थर§, चनुली §एक टुकड़ा इतिहास§, काली §धरती धन न अपना§, मैना §मुरदाघर§ जैसे सामान्य पात्र अपने संपूर्ण मानवीय-परिवेश के साथ मिलते हैं । प्राचीन कथा-साहित्य में ऐसे सामान्य पात्र कभी-भी मुख्य पात्रों की भूमिका के साथ नहीं आये हैं । इसके साथ ही आजके कथा-साहित्य में घटना-वैविध्य और पात्र-वैविध्य भी बढ़ गया है ।

पुराना कथा-साहित्य कथा-सूत्र § Story Motif § के आधार पर निर्मित होता था, अत: उसका ढाँचा कुछ बना-बनाया-सा होता था । जैसे बहुत-सी मद्रास या बम्बई में बननेवाली फिल्मों में हम आगे आनेवाली घटनाओं का अंदाज़ा लगा सकते हैं, उसी प्रकार कुछ कहानियों को सुन लेने के उपरान्त यहाँ भी हम घटनाक्रम को बताया जा सकता है; जबकि आधुनिक कथा-साहित्य का प्राण-तत्व है उसकी यथार्थ धर्मिता । अत: उसके पात्र और घटना जीवन्तता लिये हुए रहते हैं । इनमें वैविध्य रहता है । बँधी-बँधायी मुद्राएँ लेकर वे अवतरित नहीं होते ।

अत: संक्षेप में कहा जा सकता है कि आधुनिक कथा-साहित्य की यह विधा - उपन्यास, इस नये वैज्ञानिक - यंत्रयुग की देन है जो बुद्धि और तर्क पर आधारित है । निश्चय ही यह आधुनिक गद्यकी उपज है । उसके केन्द्र में मनुष्य है और मानवीय भावनाओं, उसके सुख-दुखों, उसके स्वप्नों, उसकी समस्याओं-- सामाजिक वा वैयक्तिक का निरूपण ही उसका लक्ष्य है ।

उपन्यास की यथार्थ धर्मिता :

पूर्ववर्ती विवेचन में इस बात का थोड़ा - बहुत संकेत तो मिल ही जाता है कि उपन्यासका सम्बन्ध यथार्थ से है । पुनरावर्तन का भय होते हुए भी यहाँ उपन्यास विषयक कतिपय परिभाषाओं और विचारों को देख जाना आवश्यक है ।

:1: "उपन्यास मनुष्य के वास्तविक जीवन की काल्पनिक कथा है । xxx ऐसी काल्पनिक कथामें असत्य का अंश चन्द्रमाकी कालिमा की भाँति प्रकाशमें लुप्त हो जाता है ।"[16] §डॉ॰ श्याम सुदरदास§

:2: "मै उपन्यासको मानव-चरित्रका चित्र मात्र समझता हूँ । मानव-चरित्र पर प्रकाश डालना और उसके रहस्योंको खोलना ही उपन्यास का मूल तत्व है ।"[17] §प्रेमचन्द§

:3: "उपन्यास कार्य-कारण श्रृंखलामें बँधा हुआ वह गद्य कथानक है जिसमें अपेक्षाकृत अधिक विस्तार तथा पेचीदगी के साथ वास्तविक जीवनका प्रतिनिधित्व करनेवाले व्यक्तियों से सम्बन्धित वास्तविक वा काल्पनिक घटनाओं द्वारा मानव-जीवन के सत्यका रसात्मक रूपसे उद्घाटन किया जाता है ।"[18] §बाबू गुलाबराय§

:4: "यह शब्द **उप** §समीप§ तथा न्यास §थाती§ के योगसे बना है, जिसका अर्थ हुआ §मनुष्यके§ निकट रखी हुई वस्तु, अर्थात् वह वस्तु या कृति जिसको पढ़कर ऐसा लगे कि वह हमारी ही है, इसमें हमारे ही जीवनका प्रतिबिंब है, इसमें हमारी ही कथा हमारी ही भाषामें कही गयी है ।"[19] §डॉ॰ देवराज उपाध्याय§

:5: "उपन्यास आधुनिक युगका महाकाव्य है । इसमें मानव-जीवन और मानव-चरित्र का चित्रण उपस्थित किया जाता है । वह मनुष्य के जीवन और चरित्र की व्याख्या करता है ।"[20] (आचार्य नन्ददुलारे बाजपेयी)

:6: "उपन्यास में दुनिया जैसी है वैसी चित्रित करनेका प्रयास रहता है ।"[21] (डॉ॰ हजारीप्रसाद द्विवेदी)

:7: "उपन्यास मनुष्यके सामाजिक, वैयक्तिक अथवा दोनों प्रकार के जीवनका रोचक साहित्यिक रूप है, जो प्राय: एक कथा-सूत्र के आधार पर निर्मित होता है ।"[22] (डॉ॰ गणेशन)

:8: श्रृंखलाबद्ध कथानक द्वारा सरल तथा गूढ़ मानव-चरित्रों का निर्माण, उनकी समस्याओं, सक्रिय गतिविधियों तथा सामाजिक एवं मानसिक संघर्षों से युक्त उसके स्वभावों एवं मनकी महती शक्तियोंका पूर्ण जीवित एवं यथार्थ चित्र कल्पनाके द्वारा जिस साहित्य रूपमें प्रस्तुत किया जाता है, उसे उपन्यास कहते हैं ।"[23] (डॉ॰ त्रिभुवनसिंह)

:9: यह सत्य है कि मुझे कविता - नाटक की अपेक्षा उपन्यासमें यथार्थ को आंकना सरल प्रतीत होता है ।"[24] (जयशंकरप्रसाद)

:10: "उपन्यास यथार्थ मानव अनुभवों एवं सत्य का आकलन है, वह जीवन की एकता में अनेकता तथा अपूर्णता में समग्रता स्थापित करनेका प्रयत्न करता है ।"[25] (डॉ॰ लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय)

:11: "अपने यहाँ हो, अथवा पश्चिम में, उपन्यास का इतिहास मूलत: यथार्थवादी उपन्यासोंका इतिहास अथवा उपन्यास में यथार्थवाद की केन्द्रीयता का इतिहास रहा है । एक दृष्टिकोण के रूपमें, एक विचार के रूपमें अथवा एक कला-शैली के रूपमें, कहनेका मतलब चिन्तन और चित्रण, वस्तु और उसकी

अभिव्यक्ति, दोनों स्तरों पर वह यथार्थवाद की केन्द्रीयता ज्ञापित करनेवाला ही नहीं, उसकी सर्वोपरिता करनेवाला इतिहास भी रहा है। एक दृष्टिकोण और एक कला-शैली के रूपमें यथार्थवादने साहित्यकी अन्य विधाओं में भी यद्यपि अपनी गहरी छाप छोड़ी है और महत्वपूर्ण उपलब्धियाँ की हैं परन्तु कथा-साहित्यके क्षेत्रमें उसकी उपलब्धियाँ शीर्षस्थ रही हैं, "यथार्थवाद की विजय" को हम कथा-साहित्य के क्षेत्रमें उसकी पूरी गरिमा के साथ देख सकते हैं।"[26] (डॉ. शिवकुमार मिश्र)

:12: "उपन्यास का सम्बन्ध वास्तविक जीवनसे है। वह महान घटनाओंकी खोज नहीं करता, उसका रचना-क्षेत्र तो दैनिक जीवनकी साधारण घटनाएँ हैं। सम सामयिक उपन्यास तो वास्तविक जीवनसे इतना अधिक धुल-मिल गया है कि वास्तविक जीवन और उपन्यासमें अन्तर करना कठिन हो गया है। आज उपन्यासमें युग बोध की अभिव्यक्ति और यथार्थकी पकड़ पहले से कहीं अधिक तीव्र और गहरी है। वर्तमान जीवनकी जटिलताओं और सूक्ष्मताको सही रूपमें अभिव्यक्ति देनेवाली यह एक मात्र विधा है। xxx उपन्यास के ऊपर मानव-जीवनकी इन्हीं वास्तविक परिस्थितियों के चित्रण का दायित्व है। उसने गंभीरतासे मानवीय संबंधों और सामाजिक मूल्योंका विवेचन किया है। अपनी नवीन दृष्टि और संवेदनशीलता के कारण वह युगकी धड़कनों को स्वर प्रदान करता है।"[27] (डॉ. कुँवरपालसिंह)

उपन्यास मूलत: पश्चिमकी देन है, अत: कुछ पाश्चात्य विचारकों के मत भी उल्लेखनीय हैं :

:1: "उपन्यास कार्य-कारण श्रृंखला (Plot) में बँधा हुआ वह गद्य कथानक है जिसमें अपेक्षाकृत अधिक विस्तार के साथ वास्तविक जीवनका प्रतिनिधित्व

करनेवाले चरित्र एवं कार्योंको प्रस्तुत किया जाता है ।"[28]

:2: "उपन्यास केवल कथात्मक गद्य नहीं, वह मानव-जीवन का गद्य है । वह पहली कला है जिसमें मनुष्यको उसके समग्र रूपमें अंकित करते हुए उसकी भावनाओंको अभिव्यक्त किया गया ।"[29]

:3: "उपन्यास वह कथाश्रित प्रकथनात्मक गद्य है जिसमें लेखक किसी पात्रका चरित्रांकन करते हुए एक युग-विशेष के जीवन को, उसके स्त्री-पुरूषोंकी भावनाओं, राग-विरागों तथा प्रतिक्रियाओंको, उनके अपने परिवेश में विश्लेषित करता है ।"[30]

:4: "उपन्यास में मानव - अनुभवोंका चित्रण एक विशिष्टता के साथ स्वतंत्र अथवा आदर्शात्मक दृष्टिकोणसे किया जाता है । अत: अनिवार्यत: वह जीवन पर की गई एक टिप्पणी है ।"[31]

:5: "उपन्यास अपनी व्यापकतम परिभाषामें जीवन के वैयक्तिक एवं प्रत्यक्ष प्रभावका चित्रण है ।"[32]

:6: "लूकायने यथार्थवाद में जिस दूसरी बात पर बहुत अधिक बल दिया है वह प्रतिनिधिकता ( Representativeness ) की बात है, औसत या एवरेज की बात नहीं । उन्होंने यह भी कहा हैं कि सच्चा और महान यथार्थवाद मनुष्य और समाज के किसी एक या दूसरे पक्षोंकी नहीं, उन्हें एक परिपूर्ण इयत्ता में चित्रित करता है । वह अणिक प्रकार की मन: स्थितियोंके (और इस प्रकार की मन:स्थितियों को ही प्रमुखता देनेवाला एक सम्प्रदाय ही मौजूद है) प्रभाव में मनुष्य तथा स्थितियोंकी समग्रता को क्षत-विक्षत किये जानेका सख्त विरोधी है ।"[33]

उपर्युक्त सभी विधानों से एक बात विशेषत: रेखांकित की जा सकती है और वह है उपन्यास के साथ यथार्थ का सन्दर्भ । साहित्यकी अन्य विधाओं में भी यथार्थ आ सकता है, आया है, किन्तु उपन्यास में तो यह एक अनिवार्य शर्त है । डॉ• देवीशंकर अवस्थी द्वारा संपादित ग्रंथ "विवेक के रंग" में आधुनिक साहित्य की विविध विधाओंके विविध आयामों पर विचार-विमर्श हुआ है । उसमें जहाँ उपन्यासोंकी चर्चा है उस विभागको "यथार्थ से पहचान" शीर्षक दिया गया है । इन सबसे उपन्यासके व्यावर्तक लक्षणके रूपमें यथार्थ धर्मिता को हम स्थापित कर सकते हैं ।" यथार्थ के विरोध में यह कहा जाता है कि उसके चलते सार्वकालिक स्वादवाली रचनाएँ समाज को नहीं मिल जाती हैं । वास्तव में यह आरोप व्यर्थ है । यथार्थवादी कृति "गोदान" में युगीन और चिरन्तन दोनों तत्व है और कौन कह सकता है कि वह कलात्मक नहीं है ? xxx वास्तविकता यह है कि यथार्थवाद आज के साहित्य का ऐसा बहुआयामी दर्शन बन गया है कि समकालीन जीवनसत्य और शाश्वत जीवन-सत्य दोनों के सृजन में उसकी उपस्थिति सफलताकी एक अनिवार्य शर्त बन चुकी है ।"[34]

उपन्यास और मानव-जीवनकी समस्याएँ :

पूर्व - वेवेचन में यह निर्दिष्ट हो चुका है कि औद्योगिक क्रांति से विकसित समाज की जटिलता कोअभिव्यक्त करने के लिए उपन्यास एक नये काव्य-रूपके रूपमें प्रकट हुआ । अर्थात् उस नयी व्यवस्थामें समाजका स्वरूप बहुत जटिल हो गया था, उसकी समस्याएँ बहुत पेचीदा हो गयी थी, तब उसके निराकरण के लिए उपन्यास आया । इस तरह उपन्यास के उदभवका उत्सही मानवीय समस्याएँ हैं । दूसरे पूर्ववर्ती विवेचन में यह भी निर्दिष्ट

हुआ कि उपन्यास का सम्बन्ध यथार्थ से है, और जहाँ यथार्थका निरूपण होगा वहाँ मानवीय जीवन की अनेक समस्याएँ पग - पग पर आयेंगी ।

यदि हम अपने आसपासके जीवन पर नज़र डालें मो प्रत्यक्ष होगा कि हमारे सम-सामयिक या साम्प्रतिक जीवनमें कई सारी समस्याएँ हैं, जैसे -- आवासकी समस्या, नौकरीकी समस्या, जीवन निर्वाह की समस्या, बेरोजगारी की समस्या, बढ़ते हुए हिंसावाद की समस्या, दहेज की समस्या, बढ़ते हुए अत्याचार और भ्रष्टाचार की समस्या, शिवतत्व के मरने और अशिवतत्व के पनपने की समस्या, वस्तुवादी चिंतन के कारण व्यक्ति के अकेले पड़ते जानेकी समस्या, समयके अवकाशकी समस्या, समय के अभावकी समस्या, वैयक्तिक अहं और टूटते दाम्पत्य जीवनकी समस्या, पति-पत्नी के वैमनस्यमें त्रिशंकु की-सी स्थितिमें झुलसते - मुरझाते कोमल फूलों और पौधोंकी समस्या । ऐसी तो अनेकों समस्याएँ मिलेंगी । तात्पर्य यह कि मानव-जीवन समस्याओंसे भरा पड़ा हैं, और यदि उपन्यास मानव-जीवन का चित्रण, मानव-जीवनका आईना है तो उसमें भी यह समस्याएँ असंदिग्ध रूपसे आयेंगी ।

आधुनिक युगकी ज्वलंत समस्या है नारी शिक्षाकी समस्या । पिछले वर्षों मे देखा गया कि अशिक्षित रहने के कारण नारीका शोषण होता रहा । आर्य समाजी आंदोलनों एवं अंग्रेजी शिक्षा के प्रचार-प्रसार ने इस समस्याको हवा दी । समाज - सुधारकोंको यह ज्ञात होने लगा कि नारी-जागरण के लिए स्त्रियों को शिक्षित करना अत्यावश्यक है । यह एक सुखद संयोग है कि हिन्दीका प्रथम उपन्यास - भाग्यवती "पंडित श्रद्धाराम फुल्लौरी" आधुनिक युगकी सबसे ज्वलंत समस्याको लेकर लिखा गया है ।

आज भी हिन्दी के बहुत से आलोचक लाला श्रीनिवासदास द्वारा लिखित उपन्यास "परीक्षागुरू" को हिन्दीका प्रथम उपन्यास मानते हैं ।[35] उनकी इस धारणाके मूल में है आचार्य रामचन्द शुक्ल के इतिहास का यह विधान -- "अंग्रेजी ढंगका मौलिक उपन्यास पहले पहल हिन्दी में लाला श्रीनिवासदास का "परीक्षा गुरु" ही निकला था ।"[36] परन्तु आचार्य रामचन्द्र शुक्लने ही अपने इतिहास में अन्यत्र लिखा है -- " "भाग्यवती" नामका एक सामाजिक उपन्यास संवत 1934 में उन्होंने (पं. श्रद्धाराम फुल्लौरी) लिखा जिसकी बड़ी प्रशंसा हुई ।"[37] "परीक्षा गुरु" सन् 1882 में लिखा गया और "भाग्यवती" का रचनाकाल वि. संवत 1934 है, जिसमें से 57 घटाने पर ईसवी सन् 1877 आयेगा । अत: रचना काल की दृष्टि से "भाग्यवती" ही पहले आता है ।

अब दोनों उपन्यासों में निरूपित सामाजिक - समस्या पर विचार करें । "परीक्षा गुरु" में मदन मोहन नामक दिल्ली के एक रईसकी कहानी है, जो विलासी, स्वार्थी एवं चरित्रहीन मित्रोंकी सोहबतमें दिवालिया हो जाता है । सारी संपत्ति कुर्क हो जाती है और शेठजी को कैद में डाल दिया जाता है । इस संकट या परीक्षा के समय सारे मित्र उड़न छू हो जाते हैं । केवल उनकी पत्नी और ब्रजकिशोर नामक उनका एक सच्चा मित्र ऐसे संकट के समय में काम आते हैं और उन्हें बन्दीखाने से छुड़ा लाते हैं । उपन्यास का यह सूत्र कि संकट या परीक्षा का समय ही गुरु बनकर सदासद विवेक जागृत करता है, उपन्यास के "परीक्षा गुरु" शीर्षक को सार्थक करता है । दूसरी और "भाग्यवती" में लेखक ने एक तेजस्वी विदुषी नारीका चित्र अंकित किया है, जो पति द्वारा त्याग दिए जाने पर अपने संस्कार एवं शिक्षा के

बल पर जीवन-निर्वाह चलाती है । अंतमें उसके पति का भ्रम टूटता है और वह पुन: भाग्यवती को अपना लेता है । यहाँ किसीको भाग्यवती का पुन: पतिके अनुकूल होना खटक सकता है, किन्तु उस युगको देखते हुए इतनी नारी-जागृति भी पर्याप्त कही जायेगी । भाग्यवती से शकुन §आपका बण्टी§ तक की यात्रा में कई सामाजिक धात-प्रतिघात आये हैं ।

उक्त दोनों उपन्यासों में निरूपित समस्या पर विचार करने से ज्ञात होगा कि "भाग्यवती" की समस्या एक युगान्तकारी समस्या है । उसमें एक नये युगके श्री गणेश का संकेत मिलता है । उसकी समस्या "परीक्षा गुरु" की समस्या से अधिक बड़ी, ताज़ा और नवीन है । इस अर्थमें वह "परीक्षा गुरु" से भी एक पग आगे है । अत: "भाग्यवती" को हिन्दीका प्रथम उपन्यास स्वीकार करने में हमें कोई आपत्ति नहीं होनी चाहिए । पिछले सौ वर्षों में हिन्दी साहित्य में जितने भी उपन्यास आये हैं - सामाजिक, ऐतिहासिक, समाजवादी, मनोवैज्ञानिक, आंचलिक, राजनीतिक आदि सभी उनमें कोई-न-कोई समस्या मिल ही जायेगी । यहाँ तक कि "मछली मरी हुई" §राजकमल चौधरी§, "एक पतिके नोट्स" §महेन्द्र भल्ला§ जैसे उपन्यास जहाँ कोई आर्थिक, सामाजिक, पारिवारिक, समस्याएँ नहीं है, वहाँ भी व्यक्ति के निरर्थकता के बोधकी समस्या तो बनी हुई है । एक बहुत बड़ा वर्ग है, समुदाय है, जो निरंतर आर्थिक-पारिवारिक संकटों से झूझ रहा है, और जहाँ समस्याओंका अंबार है, वहाँ चाय की एक प्याली भी समस्या बनकर आती है और एक दूसरा छोटा, सीमित वर्ग है जहाँ ऐसी कोई समस्या नहीं है, परन्तु एक व्यर्थता बोध, एक खालीपन उनको खाये जा रहा है । पहले वर्गकी समस्या आर्थिक - सामाजिक अधिक है, दूसरे वर्गकी समस्या वैयक्तिक

या मनोवैज्ञानिक स्तरकी है । संक्षेपमें यही निष्कर्ष निकलता है कि मानव-जीवन समस्याओं से घिरा हुआ है, अत: उपन्यास में इन समस्याओंका आना स्वाभाविक ही नहीं प्रत्युत आवश्यक है ।

समस्या और देशकाल-सापेक्षता :

समस्याका जन्म सामाजिक, राजनीतिक, धार्मिक आदि परिस्थितियों के कारण होता है, और यह परिस्थितियाँ देशकाल के अनुसार बदलती रहती हैं । एक राज्यकी स्थिति, दूसरे राज्य से भिन्न होती है । एक देशकी स्थिति, दूसरे देशकी स्थिति से भिन्न होती है । भारत - चीन जैसे देशोमें दिन-प्रतिदिन बढ़ती हुई आबादी एक समस्या है । अत: इन देशोमें जन-संख्याकी रोकथाम के लिए परिवार-नियोजन के अंतर्गत कई सारे प्रयत्न हो रहे हैं । चीन में तो सुना है नौकरी के लिए भी राशन कार्ड माँगा जाता है । यदि किसी स्त्रीके दो से अधिक संतान होती है तो उसे नौकरी के लाभों से वंचित किया जाता है । किन्तु कुछ ऐसे देश हैं, जहाँ आज भी जन संख्या कम है, अत: वहाँ अधिक संतान उत्पन्न करनेवालों को प्रोत्साहन दिया जाता है । इस प्रकार समस्याका सम्बन्ध भौगोलिक स्थान-विशेष से भी होता है । मैदानों और पहाडोंकी समस्याएँ भिन्न होगी, उसी प्रकार गाँव और नगर की समस्याओं में भी कुछ अंतर मिलेगा ।

स्थान के अतिरिक्त कालका - समयका सम्बन्ध भी समस्या से है । एक ही देश या स्थान - विशेष की समस्याएँ भिन्न - भिन्न समयमें एक-सी नहीं होती । जन संख्या की ही बात लें तो किसी जमाने में भारत वर्ष में "शत युगोभव" आशीर्वाद समझा जाता था, आजके संदर्भ में उसे अभिशाप माना जायेगा ।

विगत दो महायुद्धोंने योरोप के जीवन को छिन्न-भिन्न, क्षत-विक्षत कर डाला है । युद्धकी विभीषिकाओंने उनकी तमाम आस्थाओंको हिला डाला है । युद्धोत्तर शांतिने उनके जीवन रसको सोख लिया है । अत: धर्म, परिवार, ईश्वर सभी से वे कट गये हैं । इन निराशावादी स्थितियोंने वहाँ अस्तित्ववादी चिंतन को जन्म दिया । वहाँ का मनुष्य आज संत्रास, पीडा, घुटन, भयानक एकलता आदिसे छटपटा रहा है । बढ़ते हुए वस्तुवाद एवं यंत्रवाद ने उन्हें जड़ बना दिया है, स्वार्थी एवं स्वकेन्द्री बना दिया है । स्थिरता, सुविधा, सुरक्षा, समृद्धि आदिकी स्पर्द्धा में मनुष्य अपनी इयत्ता खोता जा रहा है । आदमी आदमीसे कट रहा है । भयानक एकलता के अजगरने वहाँके समाजको बुरी तरह से ग्रस लिया है । जो वृद्ध समाजमें आदरणीय समझे जाते थे, अब वे बोझ-रूप होते जा रहे हैं । पशुओंकी तरह उनको रहने-रखने के अलग स्थान बन रहे हैं । कई बार हम अखबारोंमें पढ़ते है कि किसी नब्बे वर्षकी वृद्ध महिलाने किसी अन्य वृद्धसे विवाह किया, परन्तु यहाँ ध्यान रहे कि यह विवाह किसी आनंद-प्रमोद हेतु नहीं, अपनी भयानक एकलता-एकरसता को बाँटनेका एक प्रयत्न मात्र होता है । अभी हमारे यहाँ यह स्थिति आयी नहीं है, किन्तु प्रक्रिया जारी है। हमारे महानगर शनै: शनै: योरोपीय-अमरिकी विभीषिकाओं से ग्रस्ति होते जा रहे हैं और महानगरों से नगरोंमें होती हुई यह सर्वत्र संक्रमित हो सकती हैं, यदि समय रहते चेता न गया ।

दूसरे एक ही समस्या का स्वरूप भी समय के अनुरूप बदलता रहता है । उदाहरण स्वरूप दहेज की समस्या ही लीजिए । दहेज की समस्या "निर्मला" (प्रेमचन्द) के समय में जो भी "खुले दरवाजेका मकान" (रामदरश मिश्र) तक

आते - आते काफ़ी भीषण हो गई है । दहेजके अभाव में पहले बहुओंको सताया जाता था, उन्हें मानसिक त्रास दिया जाता है, अब तो सीधे जलाया जाता है । पहले दहेजकी माँग कुछ रूपयों तक थी, अब तो उसमें बंगला, गाडी, मोटर, योरोप-अमरिका जानेका खर्च आदि सब आ जाता है । "गबन" के "रमानाथ" ने जालीपाके चंदनहार के लिए गबन किया था आज के "रमानाथ" फ्रीज, फियाट, फ्लेट के लिए भ्रष्टाचारमें डूबे जा रहे हैं ।

निष्कर्षत: कहा जा सकता है कि समस्या एवं समस्याका स्वरूप देशकाल - सापेक्ष हैं और देशकाल के अनुसार उसमें निरन्तर कुछ-न-कुछ परिवर्तन आते रहते हैं ।

युगबोध : (सन् 1960-80)

प्रस्तुत प्रबंधमें नगरीय परिवेश के उपन्यासों (सन् 1960-80) में निरूपित मानव-जीवनकी समस्याओंका अध्ययन प्रस्तुत करनेका उपक्रम है और पूर्ववर्ती विवेचन में निर्दिष्ट किया जा चुका है कि इन समस्याओं के मूलमें सामाजिक, राजनीतिक, धार्मिक आदि स्थितियाँ निहित है । अत: यहाँ संक्षेपमें उन पर विचार किया जा रहा है ।

सामाजिक स्थिति :

औद्योगीकरण, शहरीकरण, नौकरशाही, शासन प्रणाली प्रभृति कारणों से भारतीय समाजमें मध्यम वर्ग और निम्न मध्यमवर्ग का उदय तो पहले ही हो गया था । इससे पूर्व मध्यकालीन सामन्तयुग तक समाजमें केवल दोही वर्ग थे -- अमीर और गरीब । आजकाल नगरोंकी जो सामाजिक स्थिति है उसमें निम्नलिखित वर्ग-समूह पाये जाते हैं -- निम्नवर्ग, निम्न-मध्यम वर्ग,

मध्यमवर्ग, उच्च मध्यमवर्ग, उच्च वर्ग । उच्चवर्गमें भी इधर एक नया वर्ग देखने में आ रहा है -- नवधनिक वर्ग (Neo Capitialist) ।

निम्न वर्ग और उच्च वर्गमें सामाजिक मर्यादाओं, नीति-नियमों, जीवन-मूल्यों, वर्जनाओं के प्रति एक निषेधमान मिलता है क्योंकि अपनी आर्थिक-सामाजिक विगलित गर्हनीय स्थिति के कारण प्रथम के लिए इनका कोई मूल्य नहीं है । महानगरोंकी फुटपाथों और झोंपड पट्टियों में लाखों करोंडों मनुष्य बसते हैं, जो कुत्तों, कौवों और रेंगते हुए क्रीड़ोंसे भी बदतर जिन्दगी जीते हैं, जिन्हें समाजकी जूठन और गन्दगीके अतिरिक्त कुछ नहीं समझा जाता । जगदम्बाप्रसाद दीक्षित के उपन्यास "मुरदाघर" में निम्न-वर्गके इसी नरक को दिखाया गया है । बहुत पहले "त्यागपत्र" में जैनेन्द्रकुमारने इस वर्ग के सम्बन्ध में लिखा था ।

"यहाँ किसी को यह कहनेका लोभ नहीं कि वह सच्चरित्र है । यहाँ सच्चरित्रता के अर्थमें मानवका मूल्य नहीं माना जाता । दुर्जनता ही मानो कीमत है । xxx यहाँ सदाचार का कुछ मूल्य नहीं है, अपेक्षा ही नही है । बल्कि ऋण मूल्य है । अगर कहीं भीतर, बहुत भीतर मज्जा तक में विकारका कीटाणु है तो यहाँ ऊपर आ रहेगा । यहाँ छल असम्भव है, जो छल कि शिष्ट समाजमें जरूरी है । यहाँ तहजीब की माँग नहीं है, सभ्यता की आशा नहीं है । बेहयाई जितनी उघड़ी सामने आये उतनी ही रसीली बनती है । xx मनुष्य यहाँ खुलकर सगर्व पशु हो सकता है । जो नहीं हो सकता उसकी मनुष्यता में बट्टा समझा जाता है । xxx कलईवाला सदाचार यहाँ उघड़ा रहता है । xxx यहाँ कंचनकी माँग नहीं है, पीतलसे परहेज नहीं है । इससे पीतल रखकर ऊपर कंचन दीखनेवाला लोभ यहाँ छन-भर नहीं टिकता है । बल्कि यहाँ पीतल का ही मूल्य है ।"[38]

और दूसरा वर्ग तो स्वयं नीति-नियमों का निर्धारक-निर्णायक है । कहा भी गया है --- "समरथ को दोष नाहिं गुसाईं ।" यह दूसरा वर्ग अर्थात उच्च-वर्ग स्वच्छन्द है, उन्मुक्त है, बेतहाशा दौलत, बेतहाशा साधन, पश्चिमकी चकाचौंध में यह वर्ग खो गया है । हर बातमें यह पश्चिमको आदर्श मानता है । पश्चिमकी फैशन को ओढ़ने बिछानेवाला यह वर्ग पश्चिमके ज्ञान, परिश्रम और प्रामाणिकता से अपरिचित है । भ्रष्ट शासक और शासनको रूपये खिलाकर रूपये पैदा करनेकी कला में वह दक्ष है । परंतु भीतर से यह वर्ग भी खोखला है । राजनीतिज्ञ, बड़े-बड़े उद्योगपति और उच्च-अधिकारी इस वर्ग के अंतर्गत आते हैं । मानवीय सम्बन्धों और भावनाओंका यहाँ कोई अर्थ नहीं । सारे सम्बन्धोंका व्यावसायीकरण हो गया है । आचार्य रामचन्द्र शुक्लने "लोक और प्रीति" नामक निबन्ध में इस वृतिका बड़ा व्यंग्यात्मक खाका खींचा है -- "सबकी टक-टकी टके की ओर लग गई । xxx लक्ष्मी की मूर्ति, धातुमयी हो गई, तब उपासक पत्थर के हो गये, धीरे धीरे यह दशा आई कि जो बातें पारस्परिक प्रेम दृष्टि से, धर्मकी दृष्टि से की जाती थी, वे भी रूपये-पैसेकी दृष्टि से होने लगी । xxx राज धर्म, आचार्य धर्म, वीर धर्म सब पर सोनेका पानी फिर गया, सब टका धर्म हो गये । धन की पैठ मनुष्य के सब कार्य-क्षेत्रों में कर देनेसे, ब्राह्मण धर्म और क्षात्र धर्म का लोप हो गया, केवल वणिग्धर्म रह गया । व्यापारनीति राजनीतिका प्रधान अंग हो गई । बड़े-बड़े राज्य मालकी बिक्री के लिए लड़नेवाले सौदागर हो गये ।"[39] उच्च वर्ग में व्याप्त इस व्यापारी करण ( Commercialization ) ने सारे मानवीय मूल्यों को धराशायी कर दिया ।

इधर एक नया वर्ग भी पनप रहा है - नव धनिक वर्ग । येण केण प्रकारेण, भ्रष्ट तरीकों से, कालाबाज़ार से, तस्करी से, गुण्डागर्दी से पैसे कमाना ही उसका एक मात्र लक्ष्य है । इस वर्ग के पास न सभ्यता है न संस्कार । सभ्यता, संस्कार, सोहरत, मान-मर्तबा सब वे रूपये से खरीदना चाहते हैं और इस टकाधर्म समाजमें उन्हें रूपये से वह सब मिल भी रहा है । रूपये की इस ताकतने उन्हें अन्धा बना दिया है । रूपये के बल पर गुण्डे पालकर कायर होते हुए भी वे बहादुर बन रहे हैं । किसी की इज्ज़त को वे इज्ज़त नहीं समझते । सबको वे अपना ज़र - खरीदा गुलाम समझते हैं ।

उच्च-मध्य-वर्ग उच्च-वर्गका अनुकरण कर रहा है । वस्तुवादी स्पर्द्धा में वह भी जुटा हुआ है । झूठी प्रदर्शन-वृत्ति उसे भीतर से खोखला कर रही है । उच्च-वर्गकी बराबरी वह कर नहीं सकता । अत: भ्रष्टाचारी तरीकों से वह रातोंरात मालामाल हो जाना चाहता है । इन सबमेंउसने अपने सारे नैतिक मूल्योंको ताक पर रख दिया है । "प्रश्न और मरीचिका" की रूपा आण्टी और "मुक्तिबोध" की नीलिमा इसके उदाहरण हैं ।

राजनीतिज्ञ, व्यापारी, उच्च-अधिकारी इन सबकी गाज बेचारे मध्यम-वर्ग पर टूटती है । दो पाटों के बीचमें यह पीस रहा है । पुराने और नये अधकचरे जीवन-मूल्यों के बीच में झूल रहा है । पुराने मूल्योंको पूरी तरहसे छोड़ नहीं पा रहा है, नये मूल्यों को पूरी तरह से अपना नहीं पा रहा है । इस द्वन्द्व में वह मर - रूप रहा है । गरीबी, महँगाई, भ्रष्टाचार, बढ़ता हुआ प्रदूषण (जल और वायुका ही नही, सामाजिक प्रदूषण) इन सबको उसे झेलना पड़ता है । निम्न - मध्य - वर्ग की स्थिति और भी खराब है ।

इस मध्य-वर्ग की एक उपज है बुद्धिजीवी वर्ग । कलियुगका यह सहदेव अपनी ही द्रौपदी ( Concious ) की लाज बचाने में असमर्थ है । सबकुछ जानते - समझते हुए उसे रात-दिन समझौता परस्त जिन्दगी बितानी पड़ती है । उसका नपुंसक आक्रोश कुछ नहीं कर सकता । "एक थे हाँ हाँ, एक थे नही नहीं, हाँ हाँ की गरदन हिली ऊपर नीचे, नहीं नहीं की दायें-बायें ।[40] "राग-दरबारी" के रंगनाथ, मास्टर खन्ना और मालवीय, "कुरू कुरू स्वाहा" के जोशीजी, "नेताजी कहिन" के कक्का, अन्धेरे बन्द कमरे के मधुसूदन, हरबंस आदि, टेराकोटा का "रोहित", "प्रेम अपवित्र नदी" का विष्णु पद आदि ऐसे ही अकेले में गुरानेवाले शेर हैं । ये ऐसे द्रोण हैं जिनकी अस्मिता उच्च वर्गीय कौरवों के यहाँ रेहन पड़ी है । श्रवणकुमार गोस्वामी के फण्टासीपरक उपन्यास "जंगलतंत्रम्" में उन्हें जो "गिरगिट" कहा गया है, सौफी सदी ठीक है ।

नगरों में उच्च और निम्न-वर्गमें तो जाति-प्रथा टूट रही है, परन्तु मध्यम वर्ग में वह अभी पूरी तरह से टूटी नहीं है । दहेज आदिकी समस्याएँ भी इसीलिए बनी हुई हैं । अछूत की भावना अब शारीरिक वा ब्राह्य तो नहीं रही, परंतु मानसिक वह अधिक हो गई है । शनै: शनै: वह लोगों की मज्जा तक पहुँच रही है । चुनाव-लक्षी राजकारणने हिन्दुओं को अधिक हिन्दू और मुसलमानोंको अधिक मुसलमान (सांप्रदायिक अर्थो में, क्योंकि कोई सच्चा हिन्दू और कोई सच्चा मुसलमान हो जाय तो फिर समस्या ही कहाँ रहती है ।) बना दिया है ।

वस्तुवादी चेतना के कारण समाज के हर वर्ग में चीज परस्ती बढ़ गई है । मानवीय संबंधों के रेशे-रेशे बिखर गये हैं । खूनके रिश्ते पानीके हो रहें हैं।

मनुष्य का मूल्यांकन उपयोगितावाद के सन्दर्भ में आंका जा रहा है । मनुष्य नितान्त स्वार्थी और स्वकेन्द्रित हो रहा है । उसके सारे आदर्श टूट चुके हैं । चारों तरफ भ्रष्टाचार और कालाबाजार का बाज़ार गर्म है । एल॰ एस॰ डी॰, हेरोइन, हशिश, स्मैक, मारेजुआना, गांजा, चरस आदिका तस्कर व्यापार बढ़ रहा है और मौत के ये सौदागर समाज में सम्मानित स्थानों पर बिराजित होकर देशकी रहनुमाई कर रहे हैं ।[41] ऐसी स्थितिमें आस्था टिके तो कहाँ ?

स्वतंत्रता-प्राप्ति के पश्चात स्त्रीशिक्षाका व्यापक प्रसार हुआ है इसके पूर्व न तो माता-पिता लड़कियों को शिक्षा दिलाने के पक्षमें थे और न ही शिक्षाकी दृष्टि से समुचित सुविधाएँ उपलब्ध थी । सन 1882 मे पढी-लिखी लडकियों की कुल संख्या : 2054 थी जो सन् 1981 में बढ़कर 7 करोड 91 लाख से अधिक से अधिक हो गयी ।[42] इस स्त्री शिक्षाने जहाँ उन्हें अधिक "आत्मनिर्भर किया है, वहाँ नवीन सामाजिक समस्याओंको जन्म भी दिया है । स्त्री-शोषण का एक नया आयाम शिक्षित व्यवसायी अविवाहित लड़कियों के रूपमें सामने आया है । उनकी सैक्स-जनित-कुण्ठा तथा उत्तरकालीन जीवन के असहाय एकाकीपन से एक नवीन नाटकीयता एवं मानव-ट्रेजड़ी का निर्माण हुआ है ।"[43]

स्त्री-शिक्षा के कारण आज नगरीय स्त्रियोंकी सामाजिक चेतना भी बढ़ती जा रही है । इस सम्बन्ध में डो॰ पणिक्कर का कथन है कि "स्त्रियों द्वारा हिन्दू जीवनके सिद्धान्तोंका पुनर्परीक्षण आज हिन्दू समाजके लिए सबसे बड़ी चुनौती है । बदली हुई सामाजिक आवश्यकताओं के प्रति उनके मस्तिष्क की जागरूकता, पूर्णत: असन्तोषजनक आदर्श के प्रति उनमें बढ़ते

हुए क्षोभ, परम्पराओं के नाम पर उन्हें स्वतंत्र जीवन के लिए आवश्यक मौलिक अधिकारों से वंचित रखना, शिक्षा से उत्पन्न होनेवाली महत्वाकांक्षा और राष्ट्र के जीवन में सम्मिलित होने और उसके भविष्यका निर्माण करने हेतु चल रही राष्ट्रीय संघर्ष के दो पीढ़ियों के साहसिक अनुभवों आदिने उन्हें जीवन के आदर्शों का पुनर्परीक्षण करनेकी प्रेरणा दी है ।"[44]

इस सामाजिक-बौद्धिक चेतनाने स्त्री के स्वतंत्र व्यक्तित्व को जन्म दिया है । परंतु सहस्त्राधिक वर्षो से हमारे पुरुष - समाज के जो संस्कार बने हुए हैं, लाख शिक्षा के बावजूद उसमें कोई खास बुनियादी अंतर आया नहीं है । उसकी अधिकार की भावना आज भी समाप्त नहीं हुई है । परिणामत: स्त्री-पुरुष के व्यक्तित्वों और अहं में एक टकराव की स्थिति का निर्माण हो गया है । अहं के इस टकराव में कई दाम्पत्य-जीवन बरबाद भी हो रहे हैं । माँ-बाप के इस टकराव में सबसे दयनीय स्थिति बच्चों की होती है । "आपका बण्टी" का बण्टी, "वे दिन" का मीता, "कड़ियाँ" का पप्पू इसके उदाहरण हैं ।

संक्षेप में कहा जा सकता है कि आलोच्य काल की नगरीय सामाजिक स्थिति अनेक आर्थिक-सामाजिक संकट, कुण्ठाओं, मानसिक दबावों - तनावों, भ्रष्ट जीवन मूल्यों एवं स्वच्छन्दता से उत्पन्न निरर्थकता बोध से ग्रस्त है ।

राजनीतिक स्थिति :

राजनीतिक दृष्टिसे यह काल मोहभंगका है । भारतीय स्वतंत्रता के इन पैंतीस वर्षों के इतिहास खण्ड को हम दो भागों में विभाजित कर सकते है -- (1) मोहग्रस्तता का काल, और (2) मोहभंग का काल मोहग्रस्तता का काल वह था जिसमें भारतीयों को अनेक आश्वासन दिए गए तथा उनके पूरे

होने का भ्रम प्रत्येक जनमानस में बना रहा । यह समय सन् 1960 तक चलता रहा ।[45] शांतिमय सह अस्तित्व, पंचशील, हिन्दी-चीनी भाई-भाई जैसे नारों के बावजूद सन् 1962 को चीनने भारत पर धावा बोल दिया । हमारे मोह का कैंचुल उतर गया । इस युद्ध में भारत को पराजय से हाथ धोना पड़ा क्योंकि सामरिक दृष्टि से हम बिलकुल असावधान थे । फलत: चीनने हमारी कई चौरस मील जमीन पर अधिकार स्थापित कर लिया जो आज भी उसके पास है । पंडित जवाहरलाल नहेरू की आस्था, सम्मान एवं लोकप्रियता का संमोहन कुछ दूर हुआ और इसी निराशापूर्ण मानसिकता के साथ सन् 1964 की 27 मई को उनका देहावसान हो गया । पंडितजी के बाद लालबहादुर शास्त्री स्वतंत्र भारत के द्वितीय प्रधानमंत्री हुए । अठारह महीने के अल्पकाल में उन्होंने अभूतपूर्व लोकप्रियता हासिल की, उनके समय में सन् 1965 में पाकिस्तान ने भारत पर आक्रमण किया जिसमें उसे मुँह की खानी पड़ी । वामन की विराटता का अनुभव लोगोंने पहली बार किया । परन्तु विजय का यह आनद जन-मानस पर अधिक समय तक टिक नहीं पाया क्योंकि ताशकन्द वार्ता में गए शास्त्रीजी की 11 जनवरी सन् 1966 में शंकास्पद स्थितियों में मृत्यु हुई । शास्त्रीजी की मृत्यु के उपरांत कोंग्रेस के वयोवृद्ध प्रौढ़ एवं विपक्ष नेता श्री कामराज नादर के प्रयत्नों से श्रीमती इन्दिरा गांधी भारत की प्रथम महिला प्रधानमंत्री हुई । प्रधानमंत्री के रूप में श्रीमती गांधी के चुनाव में पंडित नहेरू के प्रति अहोभाव तो था ही, किन्तु यह भावना भी काम कर रही थी कि वह उनके कहे अनुसार चलेगी । इस सम्बन्ध में उमा वासुदेव के यह विचार दृष्टव्य हैं --

'In 1966 he (Kamaraj Nadar) played a major role in marshalling opinion in favour of Indira Gandhi's canfidature for prime minister, as against Moraraji. xxx He was a great admirer of Jawaharlal Nehru, but sentiment was not the only reason for the support he gave Indira Gandhi. He thought that as prime minister she would be ameanable to persuation and to his influence."[46]

किन्तु थोड़े ही समय में नादरजी का यह भ्रम भी टूट गया जब इन्दिराजी का स्वतंत्र व्यक्तित्व सामने आने लगा । सन् 1969 के बेंगलोर अधिवेशन में राष्ट्रपति पदके चुनाव को लेकर कांग्रेस इन्डीकेट-सिन्डीकेट में विभाजित हुई । कांग्रेस के निर्वाचित उम्मीदवार श्री नीलम संजीव रेड्डी के विरुद्ध श्री वी•वी• गिरि को खड़ा किया गया । श्रीमती गांधी ने "आत्मा की आवाज" का नारा बुलंद किया । अधिकांश कांग्रेसियों ने श्रीमती गांधी का साथ दिया और श्री वी•वी• गिरि जीत गये । वस्तुत: यह श्री कामराज नादर मुरारजीभाई देसाई, नीलम संजीव रेड्डी जैसे पुराने कांग्रेसी नेताओं के खिलाफ श्रीमती इंदिरा गांधी की जीत थी ।

श्रीमती गांधीने अपनी लोकप्रियता में और वृद्धि करने के लिए बैंको का राष्ट्रीयकरण कर दिया । सन् 1971 के आमचुनाव में विरोध पक्षों के "इन्दिरा हटाओ कार्यक्रम" के सामने श्रीमती गांधीने "गरीबी हटाओ" का नारा दिया जो काफी कारगत हुआ । कोंग्रेस {आई} को लोकसभा में 350 सीटें मिली - पहले से भी 120 ज्यादा ।[47] इस जीत से इन्दिरा गांधी का हौसला और बुलंद हो गया । उसी वर्ष बांगलादेश को लेकर भारत-पाकिस्तान

के बीच युद्ध छिड गया । भारतीय सेना तथा बांगला मुक्तिवाहिनी के संयुक्त प्रयत्नों से सन् 1972 में बांगलादेश (पूर्व पाकिस्तान) एक स्वतंत्र देश के रूपमें अस्तित्व में आया । बंग बंधु शेख मुजिबर रहमान उसके प्रथम राष्ट्र प्रमुख हुए ।

इस युद्ध से श्रीमती गांधी की लोकप्रियता में और भी बाढ़ आ गयी । झाँसी की रानी लक्ष्मीबाई, जान आफ आर्क तथा दुर्गा से उसकी तुलना होने लगी। इस अश्रुतपूर्व लोकप्रियता को भुनाने में इन्दिराजी ने कोई गलती नहीं की । सन् 1972 के प्रांतीय-चुनावों में कुल 2529 स्थानों में से 1926 स्थान कांग्रेस (आई) को मिले,[48] जिसने इन्दिराजी की शक्ति को शतश: बढ़ा दिया ।

राष्ट्रपति के पद की अस्मिता अब शनै: शनै: बुझ ने लगी ।[49] यही हाल राज्यपालों और मंत्री मंडल के सदस्यों का भी हो गया । सभी आज्ञांकित छात्रोंका रोल अदा करने में अपनी कुशलता प्रदर्शित करने लगे ।[50] इन्ही दिनों कांग्रेस प्रमुख देवकान्त बरुआने वह बहुचर्चित 'India is Indira and Indira is India' का सूत्र दिया था । सर्वत्र "राग दरबारी" का आलाप सुनाई पडता था ।

थोडे समय में "बांगला देश" से सम्बन्धित भ्रमजाल भी टूटा । बंग बंधु मुजिबर रहमान की हत्या हुई और अब पुन: बांगलादेश भारत से शत्रुवत् व्यवहार करने लगा है । गंगा के पानी और सीमाबन्दी को लेकर विवाद चल रहे हैं । दूसरी ओर सिमला करार के बावजूद भारत-पाकिस्तान युद्धकी आशंका बराबर बनी रहती है ।

सन् 1974 में महँगाई, रोजी-रोटी, व्यापक-भ्रष्टाचार आदिको लेकर जननायक जयप्रकाश नारायण के नेतृत्व में बिहार में "छात्र आंदोलन हुए । उसी वर्ष राजनीतिक चेतना के रूपमें गुजरातमें नवनिर्माण आंदोलन चला जिसने सारे देश का ध्यान आकर्षित किया, किन्तु बादमें वह केवल एक राजनीतिक स्टंट मात्र बनकर रह गया । श्रीमती गांधी की इच्छा के विपरीत मुख्यमंत्री बने हुए श्री चीमनभाई पटेल के हटते ही आंदोलन "टाँय टाँय फिस" हो गया ।

इसके बाद घटनाएँ बहुत ही तेजी से घटित हुई । परिणाम स्वरूप 12 जून सन् 1975 का न्यायमूर्ति जगमोहनसिंहा का श्रीमती गांधी के चुनाव के खिलाफ ऐतिहासिक फैसला 26 जून सन् 1975 को आपातकालीन स्थिति (Emergency) की घोषणा, विरोधी दल के सैंकडों छोटे - बड़े नेताओं तथा विरोध प्रदर्शित करनेवाले बुद्धिजीवियों एवं साहित्यकारों को जेल की सलाखों के पीछे धकेल देना, बडौदा का डायनेमाइट प्रकरण, परिवार-नियोजन के नाम पर कुछ सख्तियाँ आदि घटनाओं से देश का राजनीतिक वातावरण गरम हो गया था । इन स्थितियों में स्वयं को पुनर्स्थापित करने के हेतु श्रीमती गांधी ने जनवरी सन् 1977 में आम चुनाव घोषित किये । जार्ज फर्नान्डीज़ को छोड़कर शेष सभी बड़े नेताओं को छोड़ दिया गया ।

"यहाँ से भारतीय राजनीति में एक नया मोड़ आया । देश के इतिहास में पहलीबार कुछ विरोधी दलोंने मिलकर "जनता पक्ष" का निर्माण किया, जिसने उत्तर भारत के सभी राज्यों में अश्रुतपूर्व सफलता हासिल की । स्वाधीनता के बाद पहलीबार कांग्रेस का विकल्प सामने आया और श्री मुरारजीभाई देसाई प्रधानमंत्री हुए ।"[51]

परन्तु यह ध्रुवीकरण अधिक समय न रह सका । पारस्परिक विवादों के फलस्वरूप दो साल की अल्प अवधि में ही जनता शासन समाप्त हो गया और सन् 1979 के mid term pole में श्रीमती गांधी पुन: ज्वलंत बहुमत से उभरकर आयी । जनता शासन के दो वर्षों में भी शाह कमीशन के कारण श्रीमती गांधी ही अखबारों पर छायी रही । सामान्य लोगों की इन दिनों यही प्रतिक्रिया रही कि इनको {जनता पार्टीको} राज्य करना नही आता" I had heard people in all walks of life, all over the country, say, Inko raj karana nahin ata - these people (Janata) don't know how to rule."[52]

यह तो हुई राजनीति - विषयक एक सामान्य बात । किन्तु इन दिनों राजनीति में कैसे - कैसे भ्रष्ट लोग आ गये, उसका संकेत तो रेणु के "मैला आंचल" में मिल ही गया था । उसके बाद भी यह चक्र तो चलता ही रहा है । अभी कुछ समय पहले तक राजनीतिक पार्टी के लोग गुण्डों का साथ लेते थे । महाभोज {मन्नू भण्डारी} के दा साहब जोरावर जैसे गुण्डेको शह देते हैं । ऐसे दा साहब और जोरावर देश भरमें फैले हुए हैं जिनके यहाँ लोगों के गाय-बैल या जेवर ही नहीं, बोली आवाज तक रेहन रखी हुई है ।[53] अब शनै: शनै: राजनीति में विधानसभा और लोकसभा के सदस्य के रूप में गुण्डें भी आ रहे हैं । यह समस्या हमारे समूचे लोकतंत्र पर एक बहुत बड़ा प्रश्नचिह्न है । ऐसी ही एक दूसरी गंभीर समस्या हैं --- राजनीतिका जीवन के सभी क्षेत्रों में प्रवेश । राजनीति की इस फैलती काली अंधी छायाने देश के तमाम क्षेत्रों को विषाक्त कर दिया है । शिक्षा, धर्म जैसे पवित्र क्षेत्रों में भी अब राजनीति आ गयी है । प्रत्येक बात का विचार देश या राष्ट्रीय हित को

लक्ष्य में रखकर नहीं, राजनीति (पार्टीगत राजनीति) को केन्द्र में रखकर होता है । फलत: समाज के सभी क्षेत्रों में एक अभूत पूर्व नैतिक अध:पतन की स्थिति देखने में आती है ।

धार्मिक स्थिति :

धर्म कभी भी समाज या राजनीति का मुखापेक्षी नहीं होना चाहिए और जब वह उसका मुखापेक्षी हो जाता है तब उसमें पतन की प्रक्रिया का प्रारंभ हो जाता है । आलोच्य-काल में धर्म की दृष्टि से वातावरण संतोषजनक नहीं है । राजनीति और धर्म के गठबन्धन ने उसे दूषित किया है मठ और आश्रम, अनीति और अत्याचारके अड्डे बने हुए है । राजनीतिक नेताओं तथा अधिकारियों का यहाँ बराबर आना-जाना रहता है । आचार्य और स्वामी कभी-कभी राजनेताओं के सेवक-सा व्यवहार करते हैं । कहीं-कहीं यह भी देखा गया है कि लोग अपने कामों में लिए धर्म का आश्रय ग्रहण करते हैं ।

स्वामी विवेकानंद के मतानुसार धर्म मानव को इस संसार और परलोक में आनंद की खोज के लिए प्रेरित करता है । वह कार्य पर प्रस्थापित है और आनंद की प्राप्ति के लिए मानव को वह रात-दिन कार्य से संलग्न रखता है ।[54] डॉ. राधाकृष्णन के अनुसार जिन सिद्धान्तों का हमें अपने दैनिक जीवन में और सामाजिक सम्बन्धों में पालन करना है, वे उस वस्तु द्वारा नियत किये गये हैं, जिसे धर्म कहा जाता है । यह सत्य का जीवन में मूर्ति रूप है और हमारी प्रकृति को नये रूपमें ढालने की शक्ति है ।[55]

उपर्युक्त दोनों मतों में धर्म के उदात्त स्वरूप की बात है, किन्तु आजकल तो धर्म अपनी स्वार्थ-पूर्ति का एक साधनमात्र हो गया है । ढोंग और ढकोसले बढ़ गये हैं । धर्मका सच्चा स्वरूप उसमें विलुप्त हो गया है ।

प्रेमचन्द, रेणु आदि में धर्म के इस विकृत स्वरूप के प्रति एक विरोध-भाव प्रारम्भ से मिलता है । नागार्जुन के "इमरतिया" उपन्यास में तो धर्म के नाम पर चलनेवाले अनैतिक व्यापारों को ही लक्ष्य बनाया गया है । मठ के राजनीतिक अभाव को बढ़ाने के लिए जमनिया-मठ का अधिष्ठाता सधुआइनों का प्रयोग भी करता है ।

निष्कर्षत: कहा जा सकता है कि आलोच्यकाल की सामाजिक, राजनीतिक, धार्मिक स्थिति संतोषजनक न होने से उसने अनेक समस्याओं को जन्म दिया है ।

औद्योगीकरण और उसके सामाजिक प्रभाव :

औद्योगीकरण एवं नगरीकरण परस्पर सम्बन्धित एवं सहगामी प्रक्रियाएँ हैं । किसी स्थान पर उद्योग - धन्धोंकी स्थापना होने पर वह स्थान धीरे धीरे नगर का रूप ले लेता है । जहाँ उद्योग -धन्धे एवं कारखाने लगा दिये जाते हैं वहाँ हजारों की संख्या में मजदूर व अधिकारी तथा इनकी आवश्यकताओं की पूर्ति करनेवाले व्यक्ति आकर बस जाते हैं और कालान्तर में यह स्थान नगर बन जाता है । टाटानगर, दुर्गापुर, भिलाई, राउरकेला जैसे नगरोंका विकास इस औद्योगिकरण की प्रक्रिया के कारण हुआ है ।

दूसरे नगर भी उद्योगों की स्थापना के लिए प्रेरित करता है और उसके कारण नगर की जनसंख्या एवं विस्तार में निरन्तर वृद्धि होती रहती है । उद्योगों की स्थापना के लिए अनेक प्रकार की आवश्यकताओं की पूर्ति होना आवश्यक है, जैसे कच्चे माल की उपलब्धि, यातायात के साधन, सस्ता श्रम, पूंजी बेन्क की सुविधा, पानी एवं बिजली आदि की उपलब्धि । इन सुविधाओं की

पूर्ति शहरों में सहजता से हो जाने के कारण अधिकांशत: व्यापारी व उद्योगपति अपने फल - कारखाने एवं उद्योग - धन्धे शहरों में या उनके आसपास ही लगाते हैं । बम्बई, अहमदाबाद, बडौदा, दिल्ली, कलकत्ता, कानपुर, बेंगलौर आदि शहरो में उपलब्ध सुविधाओं के कारण ही वहाँ अनेक प्रकार के उद्योग स्थापित हो गये हैं ।

औद्योगिक क्रांति :

मानव का प्रारंभिक जीवन आखेट व फल-फूलों के संग्रह पर आधारित था । धरे-धीरे उसने पशु पालनको अपनाया । प्रकृति को फलते-फूलते देखकर उसे कृषिकी प्रेरणा मिली और उसने अनेक प्रकार की दालों, फलों, तिल हनों, कन्दमूलों और चावल, गेहू, मक्का, ज्वार, बाजरी जैसे अनाजों को उगाना और पैदा करना शुरू किया । कृषि से उत्पन्न वस्तुओं एवं खनिजों के सहयोग से उसने कुटीर व्यवसाय प्रारम्भ किये जिसके साथ ही मानव औद्योगिक युग में प्रविष्ट हुआ । प्रारम्भ में उद्योग-धन्धे मानवशक्ति एवं पशु के द्वारा संचालित होते थे, किन्तु वैज्ञानिक आविष्कारों एवं खोजों के फलस्वरूप जड़-शक्ति द्वारा संचालित मशीनों की सहायता से उत्पादन होने लगा तो उद्योगों में क्रांति आयी । वर्तमान औद्योगीकरण का जन्म औद्योगिक क्रांतिका ही एक परिणाम है । औद्योगिक क्रांति से तात्पर्य उद्योगों में आये उन क्षिप्रगामी परिवर्तनों से है जो वैज्ञानिक अनुसन्धान से उत्प्रेरित मशीनीकरण के कारण संभव हो सके ।

औद्योगीकरण की नींव 18वी सदी में इंग्लैंड व अन्य यूरोपीय देशों में रखी गयी और वहाँ से वह शनै: शनै: विश्व के अन्य भागों में भी प्रसारित हुई । सन् 1764 में जेम्स हरग्रीव नामक व्यक्तिने इंग्लैंड में ऐसे चर्खे का निर्माण

किया जिस पर एक साथ 10 सूत काते जा सकते थे। सन् 1768 में रिचर्ड आर्क राइट ने यांत्रिक शक्ति से चलनेवाले ऐसे बेलन का आविष्कार किया जिस पर एक साथ दो-सौ सूत काते जा सकते थे। सन् 1750 में लकड़ी के कोयले के स्थान पर पत्थर के कोयलेका उपयोग होने लगा। अब धातुओं को गलाकर मशीनोंको बनाना सरल हो गया, किन्तु औद्योगिक क्रांति एवं औद्योगिकरण का व्यवस्थित शुभारम्भ तो सन् 1761 से माना जाता है जब जेम्स वाटने भापके इंजिन का आविष्कार किया। सन् 1814 में जार्ज स्टीवेन्सन ने विश्व की प्रथम रेलगाड़ी का आविष्कार किया, जिसने यातायात एवं उद्योगों में आमूल - चूल परिवर्तन ला दिया। सन् 1802 में सर्वप्रथम भाप के ईंजन का प्रयोग किया गया। इस प्रकार 18वीं सदी में ऐसे अनेक वैज्ञानिक आविष्कार हुए जिनके कारण औद्योगिक-क्रांति संभव हो सकी। मशीन, पेट्रोल, कोयला, बिजली, परमाणु शक्ति आदिके कारण उसकी गति और भी तीव्र हो गई। यातायात एवं संचार वादन के नवीन साधनों तथा मुद्रा के प्रचलनने भी इस औद्योगिक क्रांतिको बढ़ाने में विशेष सहयोग दिया।[56]

भारत में औद्योगिक विकास :

भारत में औद्योगिक विकासका आरंभ चाय, कहवा एवं नील की खेती में यूरोपीय व्यापारियों के विनियोग से हुआ। सन् 1857 में चाय बागानों की संख्या 48 थी, जो 1871 में 295 हो गयी और आज भारत विश्व में चाय उत्पादन करनेवाले देशों में दूसरे स्थान पर है। सन् 1840 में यूरोपीय जाति द्वारा कहवे की खेती प्रारंभ की गई थी सन् 1960 से

1970 के बीचमें इस उद्योग में काफी प्रगति हुई और आज भी यह उद्योग निरंतर प्रगति पर है । किन्तु भारत में औद्योगीकरण का प्रारंभ तो सन् 1850 से माना जाता है, जब पहली बार भारत में कपड़े की मिल की स्थापना की गई । धीरे-धीरे कोयला, कपड़ा एवं जूट उद्योग बढ़ने लगे । इन उद्योगो पर अधिकांशत: अंग्रेज कम्पनियोंका ही स्वामित्व था । सन् 1914 तक लगभग 70 सूती वस्त्र उद्योग एवं 30 जूट मिलोंकी स्थापना हुई । सन् 1853 में बम्बई-थाना के बीचमें पहली रेल-लाइन डाली गई । उसके बाद शनै: शनै: रेलोंका विस्तार हुआ, जिसने उद्योगों के विकास में भी अपना योग दिया । सन् 1890 में बिहारके सिंहभूम जिले के साँची नामक स्थान पर टाटा लोह एवं इस्पात उद्योग की नींव रखी गयी जिसने सन् 1913 में अपना उत्पादन प्रारंभ किया । प्रथम विश्व-युद्ध के समय शत्रु राष्ट्रों से आयात बन्द हो जाने के कारण देशमें सूती एवं ऊनी वस्त्र, लोहा-इस्पात, जूट एवं चमड़े के अनेक उद्योगोंकी स्थापना हुई । सन् 1924 से 1939 के बीच अंग्रेज सरकारने लोहा-इस्पात, कागज, माचिस, सूती कपड़ा, चीनी एवं लुगदी बनानेवाले कारखानों को संरक्षण प्रदान किया । सन् 1939-45 के द्वितीय विश्वयुद्ध के कारण उद्योगों को और भी प्रोत्साहन मिला ।[57]

सन् 1947 के पश्चात स्वातंत्र्योत्तर काल में देशमें कोयला, लोहा, खनिज, मशीन औजार, रेलगाडी, स्कूटर, मोटर साइकिल, सिलाई मशीन, पंखा, बिजलीके सामान, चीनी, चाय, कहवा, वनस्पति, खाद, रासायनिक वस्तुओं, कागज, साबुन, शराब, सिगरेट, माचिस, जहाज, पेट्रोलियम आदि अनेक उद्योगों का विकास एवं विस्तार किया गया । वर्तमान समय में देशके 95 % उद्योगों पर भारतीयोंका अधिकार है । आज

बम्बई, अहमदाबाद, कलकत्ता, दिल्ली, भिलाई, दुर्गापुर, राउरकेला, सोनीपत, अम्बाला, लुधियाना, अमृतसर, मद्रास, बंगलौर, बड़ौदा आदि नगरों में अनेक उद्योग स्थापित हुए है । देशकी विभिन्न पंच वर्षीय योजनाओं में इस औद्योगिक विकास पर पर्याप्त धनराशि खर्च की गयी है ।

प्रथम पंचवर्षीय योजनामें उद्योगों पर 188 करोड रूपयें खर्च करनेका लक्ष्यांक था, किन्तु 73 करोड़ रूपए ही खर्च किए गए । द्वितीय पंचवर्षीय योजना में 1620 करोड़ रूपये खर्च किए गए । चतुर्थ पंचवर्षीय योजनाओं में उद्योग एवं खनिज पर सरकारी क्षेत्र में 3338 करोड़ एवं निजी तथा सहकारी क्षेत्रोंमें 2400 करोड रूपये खर्च करनेका प्रावधान था । पाँचमी पंचवर्षीय योजना में कुल 511 अरब 65 करोड़ रूपये खर्चनेकी व्यवस्था की गई थी । तृतीय चतुर्थ एवं पंचम पंचवर्षीय योजनाओं में वार्षिक उत्पादनका दर क्रमश: 8 % , 4 % , और 5.5 % वार्षिक रखा गया था । इस बढ़ते हुए औद्योगिकरणके कारण शहरी जनसंख्या में भी काफी वृद्धि हो रही है ।

औद्योगीकरण का सामाजिक प्रभाव एवं उनसे उत्पन्न समस्याएँ

औद्योगिकरण के कारण विशाल नगरों का विकास हुआ । जहाँ उद्योग स्थापित हो जाते हैं वहाँ कार्य करने के लिए गाँवों से अनेक लोग आकर बस जाते हैं, फलत: वह स्थान औद्योगिक नगर का रूप धारण कर लेता है । जो नगर पहले से स्थापित हैं, वहाँ उद्योगों की स्थापनासे उनका चौमुखी विकास (विस्तार एवं जन-संख्या की दृष्टिसे) होता है । इस नगरीकरण की प्रक्रिया से अनेक सामाजिक समस्याएँ उत्पन्न होती हैं ।

:1: पूंजीवादका जन्म

औद्योगीकरण से पूर्व जीवन-यापन के प्रमुख साधन कृषि एवं कुटीर व्यवसाय थे जो छोटे पैमाने पर होते थे और जिनमें अधिक पूंजी की आवश्यकता नहीं होती थी । उत्पादन स्थानीय आवश्यकताओंकी पूर्ति के लिए होता था तथा वस्तु-विनिमय प्रचलित था । उन दिनों भूमि ही सबसे बड़ी संपत्ति थी, किन्तु जब औद्योगीकरण हुआ तो समूची अर्थ-व्यवस्था में परिवर्तन हुआ । कारखाना लगाने के लिए अधिक पूंजी की आवश्यकता होती है । माल खरीदने और बेचने के लिए दलालों एवं एजण्टों की आवश्यकता महसूस हुई । वस्तु-विनिमयका स्थान मुद्रा-व्यवस्थाने ले लिया जिससे व्यापारका मार्ग और भी आसान हो गया । मुद्राका संग्रह करना भी आसान होता है । अत: जिनके पास पूंजी थी उन्होंने कारखाने लगाये । फलत: उनकी पूंजी में दिन-दूनी रात-चौगुनी वृद्धि होने लगी । श्रमिकों के श्रम का लाभ पूंजीपतियों को मिला, फलत: वे और भी अधिक धनवान होते गये । परिणाम स्वरूप धनिक अधिक धनिक और गरीब अधिक गरीब होते गये । औद्योगीरणने ही पूजीपति एवं मजदूर जैसे वर्गोंका निर्माण किया ।

औद्योगीकरणने आर्थिक प्रति स्पर्द्धा को भी जन्म दिया । इस प्रतिस्पर्द्धा में अधिक सम्पत्तिवाला कम पूंजीवाले के व्यवसायको नष्ट कर देता है और इस प्रकार उसका एकाधिकार स्थापित हो जाता है । एकाधिकार कायम होने पर वह उत्पादित मालको अपनी इच्छानुसार ऊँचे मूल्य पर बेचता है । कई बार बाज़ार से माल गायब करा देता है और इस प्रकार महँगाई बढ़ती जाती है ।

:2: बे का री

उद्योगोंकी स्थापना के कारण अधिक से अधिक लोग शहरोंकी और आकृष्ट हुए, परन्तु उद्योगों में मशीनों के लगने से मनुष्योंका स्थान मशीनोंने ले लिया । पहले जिस कार्य के लिए 50 लोगोंकी आवश्यकता रहती थी, अब केवल 10 व्यक्तियों से संपन्न होने लगा, फलत: 40 व्यक्ति तो बेकार हो गये । इस प्रकार बेकारी बढ़ती गई । उद्योगों में जब-जब अभिनवकरण ❨ Rationalization ❩ होता है, मजदूरोंकी छँटाई हो जाती है । वस्तुत: भारत जैसे देशमें जहाँ man hours की कमी नहीं है, मशीनीकरण की प्रक्रिया कम होनी चाहिए ।

:3: कुटीर उद्योगोंका ह्रास

औद्योगीकरण से कुटीर उद्योगोंका पूर्णतया ह्रास हो गया । जब मशीनों की सहायतासे उत्पादन होने लगा जो कि हाथ से बने मालकी अपेक्षा सस्ता, सुन्दर साफ व टिकाऊ होता था तो उसके सामने गृह उद्योग द्वारा निर्मित माल टिक नहीं सका । फलत: कुटीर उद्योग समाप्त होने लगे और नये-नये कारखाने अस्तित्वमें आये । कुटीर उद्योगमें कई लोगोंको रोजी-रोटी मिलती थी, दूसरे उसमें पूंजीका स्थानान्तरण भी कई लोगों में होता था । औद्योगीकरण से पूंजी एक स्थाप पर एकत्रित होने लगी । कुटीर व्यवसायों में व्यक्तिको काम करने के उपरांत जो मानसिक आनंद या व्यावसायिक - तोष ❨ Job Sutisfaction ❩ की उपलब्धि होती थी वह कारखानों में समाप्त हो गई क्योंकि उत्पादनकी इस समूची व्यवस्था में एक छोटी-सी प्रक्रिया में ही वह भाग लेता है । ग्रामीण कुटीर व्यवसायों में एक परिवार

या समूह के व्यक्ति मिलकर ही संपूर्ण निर्माण की प्रक्रिया में हाथ बँटाते थे। किन्तु जब उत्पादन मशीनों से होने लगा तो सम्पूर्ण उत्पादन - प्रक्रियाको अनेक छोटे छोटे भागों में विभाजित कर दिया गया। ओलपीन जैसी छोटी चीज भी अस्सी से अधिक प्रक्रियाओं से गुजरती है। इस श्रम विभाजन ने विशेषीकरण को जन्म दिया किन्तु उससे गृह-कलाओंका नाश हुआ। व्यक्ति निर्माणजन्य आनंद से वंचित हो गया। वह इस समूची जड़ - प्रक्रिया का एक जड़ - हिस्सा मात्र बन कर रह गया।

:4: परावलंबन

औद्योगीकरण के कारण जीवन के अनेक पक्षों में परावलंबिता बढ़ गई। कुटीर उद्योगों तथा गृह-उद्योगों में व्यक्ति थोड़ा बहुत स्वतंत्र था, कारखानों से वह बँध गया। कच्चा माल खरीदने तथा पक्का माल बेचने के लिए आज शहर-शहर, राज्य-राज्य तथा देश-देश के बीच कई प्रकार के व्यावसायिक समझौते होते हैं, फलत: प्रत्येक को दूसरे पर निर्भर रहना पड़ता है। यदि अरब राष्ट्र भारत को तेल देना बन्द कर दे या अमरिका यूरेनियम देना बन्द कर दे तो भारत की अर्थव्यवस्था पर उसका विपरीत प्रभाव पड़ सकता है। केवल डेरी - उद्योग की चर्चा करें तो पहले शहरी ग्राहक दूकानदारों से दूध खरीदता था। एक स्थान से यदि दूध ठीक नहीं लगा तो दूसरे स्थान से वह खरीद सकता था। अब डेरी उद्योग की स्थापना होने से दूध-वितरण की वह पुरानी व्यवस्था टूट गई। शहरी ग्राहक अब डेरीकी बोटलों पर निर्भर रहने लगा। अत: प्रति वर्ष दूध के भावों में मनमानी बढ़ोतरी होती है और वह विवश खड़ा कुछ नहीं कर सकता। डेरीमें किसी कारण हड़ताल हो

जाय तो व्यापारी भी उसे लूटते हैं । अत: व्यक्तिका जीवन अब धीरे-धीरे मशीन के पुर्जों का गुलाम होता जा रहा है । जैसे - जैसे यह औद्योगीकरण एवं मशीनीकरण बढ़ेगा वैयक्तिक स्वतंत्रता कम होती जायेगी और पराश्रितता बढ़ती जायेगी ।

:5: आवास की समस्या

औद्योगीकरण के कारण प्रतिदिन हजारों लोग शहरोंकी ओर भाग रहे हैं और जिस अनुपात में लोगोंका आगमन होता है उस अनुपात में नये मकानोंका निर्माण असंभव है । दूसरे शहरोंकी तरफ भागनेवाले लोग प्राय: आर्थिक दृष्टि से उतने संपन्न नहीं होते कि वे शहरमें जमीन लेकर मकान बना सके । मकानोंकी यह तंगी किरायों की वृद्धि के लिए भी उत्तरदायी है । मकान महंगे होने के कारण कई व्यक्ति मिलकर एक कमरे में रहने लगते हैं । गन्दी बस्तियोंका जन्म भी इसी कारण होता है । औद्योगिक केन्दों में मकान भीड़-भाड़युक्त सीलन भरे और बीमारियों के घर होते हैं । इससे लोगों का शारीरिक स्वास्थ्य ही नहीं अपितु मानसिक एवं नैतिक स्वास्थ्य भी बिगड़ता है ।

:6: प्रदूषण की समस्या

औद्योगीकरण से उत्पन्न अनेकानेक समस्याओंमें प्रदूषण की समस्या सबसे अधिक विकट है । कल कारखानोसे निकलनेवाली जहरीली गैसोसे वायु-प्रदूषण बढ़ता है । शहरों में मोटर, गाडियाँ, स्कूटर, ट्रक आदि रात-दिन पेट्रोलका धुआँ छोडते हैं, उससे वायु प्रदूषित होती है । इस प्रदूषणको रोकने के लिए अधिक-से-अधिक वृक्ष लगाने चाहिए । परन्तु यहाँ तो उल्टा चक्र चल

रहा है । रात-दिन जंगल के जंगल कट रह हैं । पर्वत गंजे हो रहे हैं । केवल गुजरात की बात करें तो उसके विस्तार के अनुसार 22 % जंगल होने चाहिए जब कि अब केवल 6 % जंगल रहा है क्योंकि उद्योग - धन्धों के कारण वृक्ष कट ते जार रहे हैं । प्रदूषण बढ़ रहा है । वर्षा के निरंतर कम होते जाने का भी यही कारण है । कारखानोंका गन्दा पानी नदियों में छोड़ा जाता है । उद्योग-धन्धों से नगर बढ़ रहे हैं, गन्दगी बढ़ रही है और वह सब गन्दगी नदियों में बहायी जाती है, फलत: जल-प्रदूषण भी बढ़ रहा है । सभी बड़ी-बड़ी नदियाँ अब गटरों में परिवर्तित हो रही है । गंगा, यमुना, गोमती सभीका यही हाल है । मनोरंजनके नाम पर प्रदर्शित गंदी, अश्लील, फूहड, बाजारू फिल्में लोगों के मन एवं संस्कारोंको प्रदूषित कर रही हैं । यह वैचारिक प्रदूषण तो और भी भयंकर है ।

:7: स्वास्थ्य की समस्या

उद्योगोंका वातावरण स्वास्थ्य के लिए भी हानिप्रद होता है । कारखानोंकी गड़गड़ाहट बहरेपन को जन्म देती है । कपड़े के कारखानों व सोप-स्टोन के कारखानों में काम करनेवालों की आँखों एवं फेफड़ों में रूई के रेशों तथा मिटी का प्रवेश होता है । कारखानोंका अस्वास्थ्यकर वातावरण क्षयरोग, अपच एवं अन्य बीमारियोंको जन्म देते हैं । औद्योगिक शहरोंकी भीड़-भाड़, दौड़-धूप एवं हाय-चिल्लयो भी स्वास्थ्य के लिए हानिकारक है । मिलोंका धुआँ वायु-प्रदुषण, मशीनों की आवाज ध्वनि-प्रदूषण और कारखानों से निकलनेवाला गंदापानी जल-प्रदूषण को बढ़ावा देता है जो स्वास्थ्य के लिए हानिकारक है । औद्योगिक केन्द्रों में गन्दी बस्तियाँ

फैलती है । वहाँ मच्छर-मक्खियों के कारण अनेक रोग फैलते हैं । सभी प्रकारकी अशुद्धियों के कारण मनुष्य स्वास्थ्य बिगड़ता है ।

:8: सामुदायिक भावना का ह्रास

पुराने कबीलों और ग्रामवासियों में एक प्रकार की सामुदायिक-भावना मिलती थी । परिवार, रक्त-सम्बन्ध, एवं सामुदायिक भावना के कारण वे घनिष्ट रूपसे बँधे हुए थे । वे परस्पर सहयोग एवं प्रेम से जीवन व्यतीत करते थे एवं एक-दूसरे के सुख-दु:ख में हाथ बँटाते थे । किन्तु औद्योगीकरण के कारण इन सम्बन्धों में शिथिलता आयी, अपरिचितता बढ़ी और व्यक्तिवादी प्रवृत्तिने जोर पकड़ा । आजका मनुष्य पूरे विश्व से परिचित है, पर अपने पडोसी के बार में उसे कुछ भी पता नहीं होता । दूसरे इससे सामाजिक नियंत्रण भी कम हुआ । ग्रामीण जीवन में व्यक्ति पर परिवार, जाति, रूढियाँ, जाति-पंचायत, ग्राम-पंचायत एवं धर्म का नियन्त्रण था । औद्योगीकरण के कारण बडे-बडे नगरों में यह सब असंभव हो गया और नियंत्रण औपचारिक तरीकों जैसे कानून, पुलिस, न्यायालय, सरकार आदिका सहारा लिया जाने लगा, किन्तु नियंत्रण के प्राथमिक अनौपचारिक तरीकों में जो शक्ति थी वह इन औपचारिक द्वितीयक तरीकों में नहीं रही । फलत: औद्योगिक-केन्द्रों में उच्छृंखलता दिखाई पड़ती है ।

:9: व्यक्तिगत - भावनाका विकास

औद्योगीकरण ने व्यक्तिवादी चिंतन को जन्म दिया । पहले व्यक्ति स्वयं को घर, परिवार, जाति का एक सदस्य समझता था । परिवार में सभी लोग मिलकर रहते थे, परतु औद्योगीकरण के कारण व्यक्ति नौकरी करने लगा ।

वेतनकी असमानता के कारण व्यक्ति स्वकेन्द्रित होता गया । अब परिवार केवल पति-पत्नी और बच्चे में सीमित हो गया ।

### :10: सामाजिक विघटन एवं अपराध

औद्योगीकरण के कारण समाज-विरोधी प्रवृत्तियों एवं अपराधों में वृद्धि हुई है । नगरों में सामाजिक नियंत्रण के अभाव में जीवन-विषयक उच्च मूल्योंकी उपेक्षाकी जाती है, जिसके परिणामस्वरूप समाज में विघटनकारी प्रवृत्तियाँ बलवती होती हैं और वेश्यावृत्ति, शराबखोरी, जुआ, बाल-अपराध, हत्याएँ, आत्म हत्याएँ, चोरी, डकैती, गबन जैसी प्रवृत्तियाँ बढ़ जाती है ।

### नगरीकरण और उसके सामाजिक प्रभाव

ग्राम और नगर मानव-जीवन की दो धाराएँ हैं जो अपनी-अपनी विशिष्ट जीवनशैली एवं सभ्यता के कारण अनेक युगोंसे निरन्तर प्रवाहित हो रही हैं । प्राचीन भारत में भी वाराणसी, तक्षशिला, पाटलीपुत्र, श्रावस्ती, कौसाम्बी, अयोध्या, कपिलवस्तु, नालंदा, गया, उज्जयिनी, इन्द्रप्रस्थ, मथुरा, वैशाली, तोषाली, सुवर्णगिरि जैसे नगर मिलते हैं ।[58] चन्द्र गुप्त द्वितीय के समय में (सन् 399-411) फाहियान नामक एक चीनी यात्रीने भारतकी यात्राकी थी, उसने पाटलीपुत्र और अशोक के महल की अत्यन्त प्रशंसा की है ।[59] फाहियानने गांधार, तक्षशिला, पेशावर, वैशाली, नालंदा गया आदि शहरोंकी मुलाकात भी ली थी ।[60] उसी प्रकार सम्राट हर्षवर्द्धन के समय में ह्यु-एन-संग नामक चीनी यात्रीने भारतका पर्यटन किया था । उसने लिखा है कि अनेक पुराने नगर लुप्तप्राय हो रहे थे, उनके स्थान पर नये नगर उभर रहे थे । पाटलीपुत्र का अब वह महत्व नहीं रहा था, उसका

स्थान कन्नौज ने ले लिया था । विशाल भवन, मनोहारी उद्यान और सरोवरोंसे वह सुशोभित हो रहा था । वहाँ के नागरिक भी विद्या प्रेमी एवं कलाप्रेमी थे । हर्ष के समय में प्रयाग एक महत्वपूर्ण शहर हो गया था । नालंदा और वल्लभी जैसे स्थानों में बौद्ध धर्मका प्रचार काफी जोरों पर था ।[61]

कहने का तात्पर्य यह कि प्राचीन समय में भी नगर थे और वे नगर धर्म, संस्कृति, सभ्यता, कला, विद्या, प्रशासन आदि के केन्द्र थे । परन्तु नगरोंकी संख्या कम थी और अधिकांश उद्योग-धन्धे ग्रामीण क्षेत्रों में होने के कारण कुछ ही लोग नगरों में जाकर बसते थे । पूर्ववर्ती विवेचन में निर्दिष्ट हो चुका है कि आधुनिक काल में औद्योगीकरण के कारण नगरीकरण की प्रक्रिया भी अधिक तीव्र हुई और अब अधिक से अधिक लोग नगरों में जाकर रहना चाहते हैं । डॉ॰ शिवप्रसादसिंह कृत "अलग-अलग वैतरणी" के जग्गन मिसिर विपिन बाबूको ठीक ही कहते है -- " आप जा रहे हैं विपिन बाबू, जाईये । कोई इसके लिए आपको दोष भी नहीं देगा । सभी जाते हैं । हमारे गाँवों से आज कल इक तरफा रास्ता खुला है । निर्यात । सिर्फ निर्यात । जो भी अच्छा है, काम का है, वह यहाँ से चला जाता है । अच्छा अनाज, दूध, घी, सब्जी जाती है । अच्छे मोटे-ताजे जानवर, गाय, बैल, भेड़े-बकरे जाते हैं । हट्टे-कट्टे मजबूत आदमी जिनके बदन में ताकत है, देह में बल है, खींच लिये जाते हैं पल्टन में, पुलिसमें, मलेटरीमें, मिलमें । फिर वैसे लोग जिनके पास अकल है, पढ़े-लिखे है, यहाँ कैसे रह जायेंगे ?"[62]

नगरीकरणकी प्रक्रिया ( Urbanization )

ग्राम एवं नगर के भेद को स्पष्ट करने के लिए जन संख्या, पर्यावरण, आर्थिक-सामाजिक परिस्थिति आदिको आधार बनाया जाता है, किन्तु

ग्राम एवं नगर के स्पष्टीकरण हेतु कोई निश्चित मानदण्ड नहीं है । बर्गलने उचित ही कहा है कि "प्रत्येक व्यक्ति यह जानता है कि नगर क्या है किन्तु किसीने भी उसकी संतोषजनक परिभाषा नहीं दी है ।"[63]

"नगर" के लिए अंग्रेजी में " City " शब्द प्रचलित है । स्वयं 'City' शब्द लैटिन भाषा के सिविटाज" (Civitas) से बना है जिसका तात्पर्य है नागरिकता । नगरीकरण शब्द नगर से ही बना है । सामान्यतया नगरीकरण या शहरीकरण का अर्थ नगरों के उद्भव, विकास, प्रसार एवं पुनर्गठन से लिया जाता है । गोल्ड तथा कॉब महोदय नगरों के ग्रामीण जीवन पर पड़नेवाले प्रभावों को लक्ष्य करके नगरीकरणको परिभाषित करते है -- "नागरिक जीवन-सम्बन्धी व्यवहार का ग्रामीण समुदाय पर प्रसार हो जानेका नाम ही नगरीकरण है ।"[64] हिमांशु श्रीवास्तव कृत "नदी फिर बह चली" तथा रामदरश मिश्र कृत "सूखता हुआ तालाब" में इस प्रकार के प्रभाव को देखा जा सकता है ।

बर्गल महोदय के अनुसार "ग्रामीण क्षेत्रोंकी नगरीय क्षेत्रोंमें परिवर्तित होनेकी प्रक्रिया को ही नगरीकरण मानना चाहिए ।"[65] जबकि मिचेल महोदय के अनुसार नगरीकरण नगरीय होनेकी प्रक्रियाएँ जिसमें लोग नगरोंकी ओर गमन करते हैं, कृषि को छोडकर अन्य नगरीय व्यवसायों को ग्रहण करते हैं और उनके साथ-साथ व्यावहारिक प्रतिमानों में भी परिवर्तन आता है ।[66] नेल्स एण्डरसन महोदय नगरीकरणकी प्रक्रिया में निम्नलिखित तीन बातों पर जोर देते है :- (1) लोगों का ग्रामीण क्षेत्रों से शहरी क्षेत्रोंकी ओर गमन करना, (2) लोगोंका कृषि के स्थान कृषीतर व्यवसायों को अपनाना, (3) बिना नगर में गमन किये विचारों एवं व्यवहारों द्वारा नगरीय होना ।

इस प्रकार नगरीयकरण एक जीवन विधि है जिसका प्रसार नगर से बाहर की और होता है ।[67]

उपर्युक्त परिभाषाओं के आधार पर नगरीय करणकी निम्नलिखित विशेषताएँ प्रकट होती हैं -

:1: ग्रामीण क्षेत्रोंका नगरीय क्षेत्रों में परिवर्तित होना ।

:2: नगरीकरणकी प्रक्रिया में लोग कृषि जैसे ग्रामीण क्षेत्रके व्यवसाय को छोड़कर कृषि से इतर व्यवसायों को अपनाते है ।

:3: नगरीकरण वह प्रक्रिया है जिसमें लोग गाँव छोड़कर शहरोंमें निवास करने लगते हैं, जिससे शहरोंका विकास, प्रसार एवं वृद्धि होती है ।

:4: नगरीकरण जीवन जीनेकी एक विधि है जिसका प्रसार शहरोंसे गाँवों की और होता है । इस विधि को नगरीयता या नगरवाद भी कह सकते हैं । नगरवाद (Urbanism) केवल नगरों तक ही सीमित नहीं होता वरन् गाँवमें रहकर भी लोग नगरीय जीवन विधिको अपना सकते हैं । बहुत से गाँवों में रहते हुए भी अधुनातम साधन-सुविधाओं का उपयोग करते हैं ।

:5: नगरीकरण के और भी कई आयाम है, जैसे (क) गाँव के लोग नगरों को देखने जाते है, या अन्य किन्हीं कारणों से शहरों में जाते हैं और कुछ समय तक वहाँ निवास करते है. (ख) शहरों के लोग गाँवों में जाते हैं और वहाँ शहरी प्रभावों को छोड़ आते हैं, (ग) नगरों में उत्पादित वस्तुओंको ग्रामीण लोगों द्वारा उपयोग में लाया जाता है और (घ) मूलत: गाँव के पर जो नगरों में जाकर बसे हैं, ऐसे लोग जब कुछ समय के लिए गाँवों में जाते हैं तब वे शहरी प्रभावों का जान-बुझकर

प्रदर्शन करते हैं ।

भारत में नगरीकरण :

आज विश्व के सभी देशों में नगरीय करण की गति अत्यधिक तीव्र है । विकासशील देशोंमें जहाँ विश्व की 3/4 जनसंख्या रहती है वहाँ लोगोंका गाँवों से शहरोंकी ओर स्थानान्तरण बहुत हुआ है और हो रहा है ।

पिछले दशकों में विश्वकी शहरी आबादी अप्रत्याशित गतिसे बढ़ी है । भारत में सन् 1901 से सन् 1981 तक की नगरीय करण की देरको निम्नलिखित तालिकामें दिया जा रहा है :-[68]

| वर्ष | नगरीय क्षेत्रमें जनसंख्या प्रतिशत | वृद्धि/घटोतरी प्रतिशत |
|---|---|---|
| 1901 | 10 - 84 | - |
| 1911 | 10 - 29 | - 0•55 |
| 1921 | 11 - 17 | + 0•88 |
| 1931 | 11 - 99 | + 0•82 |
| 1941 | 13 - 85 | + 1•86 |
| 1951 | 17 - 29 | + 3•44 |
| 1961 | 17 - 79 | + 0•68 |
| 1971 | 19 - 09 | + 1•12 |
| 1981 | 23 - 31 | + 4•12 |

उपर्युक्त तालिका से स्पष्ट होता है कि नगरीय जन संख्या के प्रतिशत की घटोतरी केवल सन् 1901 से 1911 में ही पायी जाती है । सन् 1911 से नगरीय जनसंख्या में उत्तरोतर वृद्धि ही पायी जाती है किन्तु सन् 1951 से सन् 1981 तक के तीन दशकों में यह वृद्धि सर्वाधिक रूपमें पायी जाती है ।

सन् 1951 में भारत में नगरोंकी कुल संख्या 2123 थी, जो सन् 1961 में 2461 और 1971 में 2921 हुई । एक लाख से अधिक जन संख्या वाले नगरोंकी संख्या सन् 1971 में 148 थी । विश्व में इतनी आबादीवाले नगरोंकी संख्या बहुत कम है । सन् 1981 की जनगणना के अनुसार इस समय देशमें 12 ऐसे नगर है जिनकी जन संख्या 10 लाख से अधिक है । ऐसे शहर है -- कलकत्ता, बम्बई, दिल्ली, मद्रास, बंगलौर, हैदराबाद, अहमदाबाद, कानपुर, पूना, नागपुर, लखनऊ तथा जयपुर । सन् 1981 की जनगणना के अनुसार देशमें कुल 3949 नगर और 5,57,139 गाँव हैं ।[69]

नगरीकरण के प्रभाव एवं समस्याएँ

इस बढ़ते हुए नगरीकरण ने अनेक सामाजिक, आर्थिक, मनोवैज्ञानिक एवं प्रशासकीय समस्याओंको जन्म दिया है, जिनकी संक्षिप्त चर्चा नीचेकी जा रही है:

§1§ पारिवारिक समस्याएँ :

गाँवों में परिवार का विशिष्ट स्थान है और वहाँ संयुक्त परिवार अधिक मिलते है । वहाँ विवाह एक धार्मिक एवं सामाजिक संस्कार माना जाता है एवं जीवनसाथी के चुनावमें माता-पिता तथा रिश्तेदारोंका प्रमुख हाथ होता है । शहरों में औद्योगीकरण, प्राश्चात्य संस्कृति के प्रभाव, श्रम-विभाजन, मकानोंकी कमी, व्यक्तिवाद आदि के प्रभाव स्वरूप संयुक्त परिवार विघटित हो रहे हैं और एकाकी परिवारोंकी संख्या बढ़ रही है । व्यक्ति पर परिवारके नियंत्रण में शिथिलता आयी है और व्यक्तिवादी प्रवृत्ति जोर पकड़ रही है । पति-पत्नी के पारस्परिक सम्बन्धों में भी परिवर्तन आ रहा है और वे सम्बन्ध समझौतों में बदल रहे हैं । स्त्री की

सामाजिक स्थिति में कुछ परिवर्तन आया है । वह अब पुरूषकी अनुगामिनी नहीं वरन् साथी, सहयोगी एवं मित्र समझी जाने लगी है । स्त्री-पुरूष की समानता पर जोर दिया जाने लगा है और वे अब शिक्षा, राजनीति, सामाजिक एवं आर्थिक सभी क्षेत्रों में पुरूषों के समकक्ष आ खड़ी हुई हैं । वे घर की चार दीवारों से बाहर आयी है और उनका मानसिक विकास हुआ है । परन्तु स्त्री की इस सजगता से स्त्री-पुरूष के अहंकी टकराहटकी समस्या भी उत्पन्न हुई है और कहीं-कहीं दाम्पत्य जीवन भी खंडित हुआ है । परिवार में वयोवृद्ध लोगों के प्रभाव एवं सम्मान में निरंतर कमी होती जा रही है । नगरों में विवाह - संस्था में भी अनेक परिवर्तन आये हैं । विवाह को धार्मिक संस्कार के स्थान पर महज़ एक समझौता माना जाने लगा है । इसीसे तलाकों की संख्या में निरंतर वृद्धि हो रही है ।

प्रेम-विवाह, अन्तर्जातीय विवाह, कोर्ट-मैरिज आदि के किस्से शहरों में बढ़ रहे हैं ।

जीवन साथी के चुनाव में परिवार एवं रिश्तेदारों की अपेक्षा स्वयं लड़के और लड़कियों की पसन्द को अधिक महत्व दिया जाने लगा है । विवाह अब दो परिवारों का नहीं वरन् दो व्यक्तियोंका आपसी मामला बनता जा रहा है । बाल विवाह के स्थान पर अब अधिक आयु में विवाह होने लगे हैं । कई बार बड़ी उम्र तक विवाह न होने के कारण कई यौन विकृतियाँ और स्वच्छन्दता पनप रही हैं ।

§2§ स्वास्थ्य की समस्या :

औद्योगीकरण के सामाजिक प्रभावों के अंतर्गत इसकी पर्याप्त चर्चा पूर्ववर्ती पृष्ठों में हो चुकी हैं । यहाँ केवल इतना उल्लेख आवश्यक हो जाता

THE M. S. UNIVERSITY OF BARODA LIBRARY



है कि नगरीकरण मानसिक स्वास्थ्य पर भी प्रभाव डालता है और उसके कारण मानसिक या मनोवैज्ञानिक बीमारियाँ शहरों में अधिक पायी जाती हैं । जल एवं वायु प्रदूषण के साथ बढ़ता हुआ ध्वनि-प्रदूषण मनुष्य के टेन्सन को बढ़ाता है ।

§3§ जाति-प्रथा एवं नगरीकरण :

जाति प्रथाको लेकर जो कठोरता गाँवों में पायी जाती है, नगरों में उसमें कुछ शिथिलता का अनुभव हो रहा है । जाति-प्रथा को लेकर खान-पान, ऊँच-नीच, परम्परागत व्यवसाय आदि में भी कुछ परिवर्तन आ रहा है । विवाह आदि में जाति का ध्यान रखा जाता हैं, किन्तु वहाँ भी शिथिलता धीरे-धीरे बढ़ रही है और व्यक्ति यदि अच्छा खाता-कमाता हो तो कई लोग विवाह आदि में भी जाति का विचार अब त्याग ने लगे हैं । होटलों, क्लबों, सिनेमा होलों आदि के कारण छुआछूत की भावना नष्ट हो रही है ।

§4§ अपराध एवं नगरीकरण :

गाँवो की तुलना में नगरों में अपराध अधिक होते हैं । नगरों में परिवार, धर्म, पडोस, रक्त-सम्बन्ध, जाति आदि का नियंत्रण कम हो जाने के कारण अपराध वृत्ति जोर पकड़ती है । शहरों में अपरिचितता के कारण भी अपराध बढ़ रहे हैं । बम्बई, कलकत्ता, दिल्ली, मद्रास जैसे महानगरों में तो अपराधियों के गिरोह के गिरोह पाये जाते है । नये रंग रूटों को अपराध का प्रशिक्षण भी दिया जाता है । विदेशी माल, सोना एवं ड्रग की स्मगलिंग के कारण भी यह गुण्डागर्दी और माफियागिरी बढ़ रही है । फिल्मों में प्रदर्शित हिंसा एवं अपराध के दृश्य भी अपराधों की

वृद्धिका एक कारण है । फलत: चोरी, डकैती, बैंकों को लूटना, हत्याएँ, लड़कियों का अपहरण, बच्चों को उठा ले जाना, धोखाधड़ी, ठगी, आदि घटनाएँ शहरों में दिन-प्रतिदिन बढ़ रही है ।

§5§ व्यक्तिवाद एवं सामाजिक विघटन :

नगरों में व्यक्तिवाद की भावना प्रबल होती है । जो लोग गाँवों से नगर में आते हैं, वे अपने परिवार से टूटकर आते हैं । नगर में बसे बाद उनमें व्यक्तिवाद का प्रवेश धीरे धीरे होने लगता है । पहले हारी-बीमारी, दुर्घटना, कुदरती-प्रकोप आदि से डर कर भी व्यक्ति संयुक्त - परिवार में रहता था, अब प्रोविडन्ड फण्ड, पेन्सन, बीमा, लोन आदिकी सुविधाओं के कारण -- व्यक्ति को परिवार पर अधिक निर्भर नहीं रहना पड़ता । फलत: व्यक्ति अधिक आत्म - केन्द्रित, अन्तर्मुखी एवं स्वतंत्र होता जा रहा है । शहरी परिवेश में अब शीत-सम्बन्ध का दौर शुरू हो गया है । प्राथमिक सम्बन्धों की अपेक्षा द्वैतीयक सम्बन्ध बढ़ रहे हैं । पारिवारिक एवं मानवीय संबंधों का स्थान अब धनने ले लिया है । धन के कारण व्यक्ति का स्टेटस ऊँचा होता है, और यह स्टेटस-स्पर्द्धा व्यक्तिवाद को और बढ़ा रही है ।

§6§ मनोरंजन एवं नगरीकरण :

गाँवोमें भजन, खेलकूद, नृत्य, गायन,आदि के द्वारा व्यक्ति को नि:शुक्ल मनोरंजन उपलब्ध होता था, परन्तु शहरों में मनोरंजन का भी व्यापारी करण हो गया है । सिनेमा, टेलीविजन, रेडिओ, खेलकूद, पार्क एवं बगीचों के लिए --

पैसा खर्च करना पड़ता है । इस प्रकार शहरों में व्यापारिक संस्थाओं द्वारा मनोरंजन जुटाया जाता है । बाजारू एवं फार्मूला सिनेमा के कारण

शहरी एवं ग्रामीण समाज पर कई बार बहुत बुरा प्रभाव पड़ता है जिसके फलस्वरूप सामाजिक-नैतिक ह्रास हो रहा है ।

§7§ मकानोंकी समस्या :

यह शहरों की एक भयंकर समस्या है । शहरों में हवा एवं रोशनीदार मकानों का अभाव होता है । कई लोग सड़क के किनारे झोंपड़ियाँ बनाकर रहते हैं । कुछ लोग फुटपाथ और स्टेशनों पर पड़े रहते हैं । बम्बई, कानपुर जैसे औद्योगिक नगरोमें कईबार एक कमरे में 10 से 15 व्यक्ति तक रहते है । इन मकानों में पाखाना एवं पेशाब घरोंका भी अभाव होता है । फलत: रहनेवालों के स्वास्थ्य पर भी उसका बुरा असर पड़ता है ।

§8§ व्यवहार की कृत्रिमता :

शहरी जीवन में व्यक्ति अक्सर कृत्रिमता ओढ़े पाये जाते हैं । यहाँ के निवासियों के पहनावे और प्रसाधन में ही नहीं, वरन् आचरण में भी अस्वाभाविकता स्पष्ट दृष्टि गोचर होती है । आपसमें मिलने पर मुस्कुराकर अभिवादन करना तो दिखावा होता है, जबकि मन ही मन वह कुमनुनाता रहता है । व्यक्ति बाहर से संपन्न व सुशील दिखायी देता है, किन्तु वास्तविकता कुछ और ही होती है । सामाजिक एवं पारस्परिक वैयक्तिक सम्बन्धों में भी दरारें देखी जा सकती हैं ।

§9: नगरीकरण के अन्य प्रभाव :

:1: नगरीकरण के कारण धर्मका प्रभाव प्रतिदिन कम हो रहा है और लोगोंका ईश्वर से विश्वास टूटता जा रहा है । यह नास्तिकता यदि किसी सिद्धान्तवादिता से जुड़ी हुई हो तब तो ठीक है, अन्यथा व्यक्तिका

जीवन धुरीहीन हो जाने से स्वच्छन्दी हो जाता है । श्रद्धा और विश्वास के बिना व्यक्ति भीतर से टूट जाता है । यह वृत्ति अपराध एवं समाज-विरोधी कार्यों को भी जन्म देती है ।

:2: नगरों में भिक्षावृत्ति भी अधिक है । इस भिक्षावृत्ति के मूलमें नगरों की विराटता और अपरिचितता भी एक कारण है । गाँवों में भीख माँगने में व्यक्ति शरमका अनुभव करता है, परन्तु अपने गाँव, परिवेश और लोगसे कटा हुआ व्यक्ति कहाँ क्या करता है उसका पता किसीको नहीं चलता, अत: व्यक्ति आसानी से इस व्यवसायकी और खींच आता है । कुछ समाज विरोधी तत्व तो छोटे बच्चों से मजबूरन यह काम करवाते हैं । नगरों में यह भी एक व्यवसाय हो गया है ।

:3: नगरों में मानसिक तनाव एव संघर्ष अधिक है, अत: उससे मुक्ति पाने के लिए कुछ लोग नींदकी गोलियाँ ( Sleeping Pills ) शराब आदि का प्रयोग करते हैं । आजकल कुछ लोग ड्रग्सका भी सेवन करने लगे हैं, यह बहुत ही भयानक सामाजिक बीमारी है । छोटे बच्चे और युवा पीढ़ी उसकी चपेट में आ रही है । यह पूरे के पूरे समाज को निर्वीर्य, नपुंसक, रूग्ण बना देनेवाला एक महान षडयंत्र है । गांजा, अफीम, हशिश, हेरोइन, स्मेक, एल•एस•डी• जैसे ड्रग्स मानव-जीवन का समूचा नूर चूस लेते हैं । शहरों में यह बीमारी हैजे की तरह फैल रही है ।

:4: अपरिचितता के तत्व के कारण शहरों में वेश्यावृत्ति भी अधिक पायी जाती है । गाँवों में चोरी-छूपे ऐसा कभी होता है, परन्तु खुले आम ऐसा करनेका कोई साहस नहीं कर सकता । वैसे गुजरात के बनासकांठा जिलेका वाडिया गाँव उसका अपवाद है क्योंकि यह पूरा-का-पूरा गाँव वेश्यावृत्ति

पर निर्भर है ।[70] परन्तु शहरों में तो यह प्रवृत्ति खुले आम पायी जाती है क्योंकि सामाजिक एवं पारिवारिक नियंत्रण का यहाँ अभाव-सा होता है । यौन - अपराधोंका आधिक्य एवं नैतिक मूल्यों का ह्रास भी शहरों में विशेष रूपसे पाया जाता है ।

:5: कौमी - दंगे शहरोंका एक बहुत भयावह दूषण है । बड़ौदा, अहमदाबाद, मेरठ, मुरादाबाद, लखनऊ जैसे शहरों में बात-बात में कौमी दंगे शुरू हो जाते हैं । वस्तुत: यह अंग्रेजोंकी "फूट डालो और राज्य करो" वाली नीतिका ही परिणाम है । अनेक बार यह दंगे राजनीति - प्रेरित होते हैं । दंगों के वातावरण में गुण्डा गर्दी एवं माफिया-प्रवृत्ति खूब फलती-फूलती है । कौमी-दंगों के कारण कई-कई दिनों तक शहर बन्द रहते हैं, जिसके आर्थिक दुष्परिणाम भी देश व समाज को भुगतने पड़ते हैं । रोज कमाने-खाने वाले वर्गके लिए तो ये दिन बड़ी मुष्किल के होते हैं ।

:6: इनके अतिरिक्त नगरों में बढ़ती जन संख्याने यातायात, शिक्षा, प्रशासन एवं सुरक्षा की भी अनेक समस्याएं पैदा की है । सभी लोगों के लिए शिक्षाकी व्यवस्था करना, यातायात एवं सुरक्षा के साधन जुटाना तथा नगर का समुचित प्रशासन करना यह एक कठिन कार्य है । बेकारी या बेरोजगारीकी समस्या भी एक बहुत बड़ी समस्या है जिसकी चर्चा पूर्ववर्ती पृष्ठों में औद्योगीकरण के अंतर्गत हो चुकी है ।

इस प्रकार हम देखते हैं कि ज्यों ज्यों नगरों का विकास होता जा रहा है, उनका प्रभाव भी बढ़ता जा रहा है । नगरों के रहन-सहन के तरीके एवं रीति-रिवाज, वस्त्र, व्यवसाय, फैशन, मनोरंजन के साधन एवं नगरीय विचार पद्धति ग्रामवासियों द्वारा ग्रहण की जा रही है । अधिकांश परिवर्तन एवं आविष्कार नगरों में ही होते हैं, जिन्हें धीरे-धीरे गाँव वाले भी अपना

लेते हैं । नगरों में धनकी प्रचुरता, शिक्षाकी बहुलता, मनोरंजन की विभिन्नता तथा जीवन की अनेक सुविधाएँ उपलब्ध हैं । इन सभी का प्रभाव ग्रामीण लोगों पर पड़ता है और फलत: अधिक से अधिक लोग शहरोंकी और स्थानान्तरण करते हैं ।

औद्योगिक शहरी सभ्यता के फलस्वरूप सभी व्यक्ति प्राय: एक प्रकार के अखबार, पत्र-पत्रिका, समाचार, सिनेमा, रेडियो, टेलीविजन, पुस्तको आदिका प्रयोग करते है । अत: केश-सज्जा एवं वस्त्रोंकी विश्व व्यापी शैली देखनेको मिलती है । इस प्रकार ग्रामीण क्षेत्रों पर नगरोंका प्रभुत्व एवं दबाव बढ़ रहा है । स्पेंगलॅर तथा लुई मम्फोर्ड जैसे प्राश्चात्य विद्वानोंने नगरीय प्रभुत्व के इस खतरे को भलीभाँति महसूस किया है । उनके क्रमश: "डिक्लाइन ऑफ द वेस्ट" ( Decline of the west ) तथा "द कल्चर ऑफ सिटीज" ( The culture of cities ) नामक ग्रंथ इस दृष्टिसे उल्लेखनीय हैं ।

निष्कर्ष

अध्याय के समग्रालोचन से हम निम्नलिखित निष्कर्षों तक पहुँच सकते हैं :-

:1: उपन्यास एक नयी विधा है जो मानव को उसके समग्र एवं यथार्थ रूपमें ग्रहण करनेकी संनिष्ठ चेष्टा करती है । उसकी यथार्थधर्मी प्रकृति के कारण प्रारंभ से ही उसमें मानव-जीवन की विविध समस्यायोंका समुचित आकलन होता रहा है ।

:2: समस्या देशकाल सापेक्ष होती है, फलत: नवीन परिस्थितियों के उद्भव से नवीन समस्याएँ भी सामने आती हैं ।

:3: आलोच्यकाल ﴾सन् 1960-80﴿ की सामाजिक, राजनीतिक, धार्मिक प्रभृति स्थितियाँ अनेक विषमताओं, विसंगतियों एवं विद्रूपताओं से परिपूर्ण होने के कारण मानव-जीवन की अनेकानेक समस्याएँ यहाँ दृष्टिगोचर होती हैं ।

:4: औद्योगीकरण एवं नगरीकरण परस्पर सम्बन्धित एवं सहगामी प्रक्रियाएँ हैं, अत: औद्योगीकरण की प्रवृत्ति नगरीकरण को भी गति प्रदान करती है । योरोप में औद्योगिक - क्रांतिका प्रारभ 18 वीं शताब्दी से होता है और वह धीरे-धीरे दूसरे देशोंमें भी संक्रमित होती है । भारत में उसका प्रारंभ 19वी शताब्दी से माना जाता है ।

:5: औद्योगीकरण एवं नगरीकरण के फलस्वरूप पूजीवादका जन्म, बेकारी, कुटीर उद्योगो का ह्रास, आवासकी समस्या, प्रदूषणकी समस्या, स्वास्थ्यकी समस्या, सामुदायिक एवं पारिवारिक भावना का ह्रास, व्यक्तिवादी भावना का विकास एवं सामाजिक विघटन, अपराध एवं यौन - समस्याओं में वृद्धि, नैतिक मूल्यों का ह्रास, जैसी समस्याएँ सामने आ रही हैं ।

## संदर्भ

:1: "The novel is not a merely fictional prose. It is a prose of man's life, the first art to attempt, to take the whole man and give his expression."
Ralph Fox : 'The novel and the people', P.20.

:2: "यह शब्द उप = समीप तथा न्यास = थाती के योग से बना है, जिसका अर्थ हुआ (मनुष्यके निकट रखी हुई वस्तु, अर्थात वह वस्तु या कृति जिसको पढ़कर ऐसा लगे कि यह हमारी ही है, इसमें हमारे ही जीवन का प्रतिबिंब है, इसमें हमारी ही कथा हमारी ही भाषा में कही गयी है ।"
डो॰ देवराज उपाध्याय : हिन्दी साहित्य कोश, भाग-1, पृ॰153 ।

:3: चिंतामणि-3, सं॰ डॉ॰ नामवरसिंह : पृ॰ 102-103 ।

:4: "उपन्यास भी प्राचीन कालमें भारत वर्षमें प्रचलित था और दशकुमार चरित्र, वासवदता, श्री हर्ष चरित, कादम्बरी आदि उपन्यास इसकी प्राचीनताके जाज्वल्य प्रमाण हैं ।" : "प्रणयिनी परिणय" पृ॰ 2 ।

:5: वही : पृ॰ 2 ।

:6: "हिन्दी उपन्यास साहित्यका अध्ययन" : पृ॰ 49 ।

:7: "परीक्षा-गुरू" : भूमिका ।

:8: वही: भूमिका ।

:9: "As I am in reality the founder of a new province in writing, I am at liberty to make what levels place there in."
Henry Fielding : Tom Jones, Book-II, P. 41.

:10: "हिन्दी उपन्यास : उदभव और विकास" : डॉ॰ सुरेश सिन्हा : पृ॰ 51 ।

:11: द्रष्टव्य : भारतीय नवलकथा {गुजराती} : डॉ॰ रमणलाल जोशी : पृ॰ 5-8 ।

:12: "प्रेमचन्द और गोर्की" :सं॰ शचिरानी गुर्टू : पृ॰ 68 ।

:13: "कुछ विचार" : पृ॰ 46 ।

:14: डॉ॰ नरेन्द्र कोहली : "दीक्षा" की सृजनयात्रा : आधुनिक हिन्दी उपन्यास : सं॰ भीष्म साहनी : पृ॰ 529-530 ।

:15: "हिन्दी उपन्यास" : स॰ डॉ॰ सुषमा प्रियदर्शिनी, पृ॰ 25 ।

:16: डॉ॰ श्याम सुंदरदास : साहित्यालोचन : पृ॰ 135 ।

:17: प्रेमचन्द : कुछ विचार : पृ॰ 46 ।

:18: "काव्य के रूप" : पृ॰ 155 ।

:19: "हिन्दी साहित्यकोश" भाग-1 : पृ॰ 153 ।

:20: "आधुनिक साहित्य" : पृ॰ 173 ।

:21: "उपन्यास" शीर्षक लेख : साहित्य संदेश : मार्च 1940 ।

:22: "हिन्दी उपन्यास साहित्यका अध्ययन" :पृ॰ 29 ।

:23: "हिन्दी उपन्यास और यथार्थवाद" : पृ॰ 83 ।

:24: "विचार और अनुभूति" : डॉ॰ नगेन्द्र : पृ॰ 31 ।

:25: "हिन्दी उपन्यास : उपलब्धियाँ : डॉ॰ लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय : पृ॰ 11 ।

:26: आलोचना-76 : जनवरी-मार्च 1986 : पृ॰ 28 ।

:27: "हिन्दी उपन्यास : सामाजिक चेतना" :पृ॰ 20-21 ।

:28: "A Fictional prose tale or narrative of considerable length in which characters and actions professing to represent those of real life. are portrayed in a plot.. New English Dixtionary.

:29: "The novel is not a merely fictional prose. It is a prose of man's life, the first art to attempt, to take the whole man and give his expression". Ralph Fox : 'The Novel and the People' : P. 20.

:30: "Thus the novel can be described as a narrative in prose, based on a story, in which the author may portray character, and the life of an age, and analyse sentiments and passions, and the reactions of men and women to their environment."
I for Evaus : 'A short History of English Literature' : P.206.

:31: "The novel is typically a representation of human experience whether liberal or ideal and therefore inevitably a comment upon life." Dr. Herbert J. Mullor.

:32: "A Novel is, in its broadest definition a personal, a direct impression of Life." : Henry James.

:33: आलोचना-76 : जनवरी-मार्च 1986 : प्रस्तोता : डॉ॰ शिवकुमार मिश्र : पृ॰ 29 ।

:34: डॉ॰ विवेकीराय : "आज के हिन्दी उपन्यासों में चित्रित जीवन का स्वरूप और दर्शन" नामक लेख ।
आलोचना-76 : जनवरी-मार्च 1986 : पृ॰ 34 ।

:35 दष्टव्य : डॉ॰ उषा पाण्डेय द्वारा लिखित लेख : "हिन्दी का प्रथम उपन्यास" : "हिन्दी उपन्यास" स॰ डॉ॰ सुषमा प्रियदर्शिनी : पृ॰ 120-127 ।

:36: "हिन्दी साहित्य का इतिहास" : पृ॰434 ।

:37: वही : पृ॰ 425 ।

:38: "त्यागपत्र" : पृ॰ 80-81 ।

:39: आचार्य रामचन्द्र शुक्ल : चिंतामणि : पृ॰ 58-59 ।

:40: सर्वेश्वर दयाल सक्सेना की एक कविता की कुछ पंक्तियाँ ।

:41: "पिछले वर्षों में भारत में मादक द्रव्यों का सेवन बढ़ा है और चोरी-छिपे रूपसे इनका विदेशों से आयात होता है । विश्व-विद्यालयों के छात्र-छात्राओं द्वारा मादक पदार्थों का प्रयोग अधिक किया जाने लगा है । इसके लिए हिप्पी संस्कृति भी उत्तरदायी है । संसार के ऊबे हुए लोग चिंता रहित, मुक्त एवं स्वच्छन्द जीवन व्यतीत करनेकी लालसामें तथा मानसिक शांतिके लिए मादक द्रव्योंका सेवन करते हैं । मादक द्रव्यों के सेवन से युवा पीढ़ी में यौन स्वच्छन्दता बढ़ी है जो भविष्य के लिए भयावह स्थिति है ।" : एम॰ एल॰ गुप्ता, डी॰डी॰ शर्मा : भारतीय सामाजिक समस्याएँ : पृ॰ 256 ।

:42: दृष्टव्य : "भारतीय समाज तथा संस्कृति" : गुप्ता एवं शर्मा : पृ॰ 367 ।

:43: डॉ॰ पारूकांत देसाई : साठोत्तरी हिन्दी उपन्यास : पृ॰ 12 ।

:44: गुप्ता एवं शर्मा : "भारतीय समाज तथा संस्कृति" : पृ॰ 370-371 ।

:45: दृष्टव्य : "साठोत्तरी हिन्दी कविता की वस्तु चेतना" : डॉ॰ बादामसिंह रावत : पृ॰ 9 ।

:46: 'Two Faces of Indire Gandhi' : P. 20-21.

:47: See. "All that the opposition had to offer the electorate was the negetive, "Indira Hatao" (get rid of Indira); by contrast Indira at least offered a slogan of hope, 'garibi hatao' (get rid of poverty). The election was a veritable Indira wave. Her party won 350 Lok Sabha seats - 120 more than before."
Indira Gandhi Returns : 'Khushwantsingh : p. 26.

:48: Ibid : P. 35.

:49: "Rajendra Prasad (1950-62), Radhakrishan (1962-67) and Zakir Husain (1967-69) were all men of considerable stature, whose opinious were respected by Nehru, Shashtri and Indira Gandhi. V.V. Giri did not have the academic distinctions of his predecessors and was essentially a creature of the Prime Minister, he did as he was bidden to do. More often, to avoid embarrassment, he was left to perform ceremonial functions and to enjoy the comforts of the presidential palace." : Ibid : P. 36.

:50: "She cut them to their proper sizes. She treated them as a masterly school mistress would treat a bunch of petulant children." Ibid : P.27.

:51: डॉ. पारूकांत देसाई : साठोत्तरी हिन्दी उपन्यास : पृ. 11 ।

:52: Khushavantsingh : 'Indira Gandhi Returns' : P.178.

:53: महाभोज : पृ. 139 ।

:54: गुप्ता एवं शर्मा : भारतीय समाज तथा संस्कृति : पृ. 29 ।

:55: वही : पृ. 29 ।

:56: दष्टव्य : भारतीय सामाजिक समस्याएँ : श्री एम.एल. गुप्ता, श्री डी.डी. शर्मा : पृ. 93-94 ।

:57: वही : पृ. 99 ।

:58: दष्टव्य : भारतका प्राचीन इतिहास : सत्यकेतु विद्यालंकार तथा "भारतकी संस्कृति और कला" : डॉ. राधाकमल मुकर्जी ।

:59: "Fahien was very much impressed by the city of patliputra and also the palace of Ashoka. According to him, the palace with its various halls was build by spirits who piled up stones, constructed walks and gates, carved designs, engraved and in laid after no human fashion.
Ancient India : V.D. Mahajan : P. 441.

:60: "Fahien visited Gandhara, Taxila and Pesha war which were full of Buddhist monuments. He visited Buddhist places like Lumbini, vaisali, Nalanda, Gaya, Bodhgaya and Rajgriha." Ancient India : V.D. Mahajan : P.439.

:61: "Hiuen Tsang tells that many new cities had come into prominence and old ones were on the decline Pataliputra was no conger the premier city of Northern India and its place was taken by Kanauj-Hiuen Tsang tells us that Kanauj was 20 li in length and about 5 or 6 li in breadth. The prosperity of Kanauj was expressed in its hofty structures, beautiful garddens, tanks of clear water and the museum of rarities collected from strange lands.' It was equally manifest in the refined appearance of its citizens, their clothes of silk and their devotion to learning and art. Prayaga had also become an important place. However, Sravasti was in ruins. Kapilvastu had only 30 months. Buddhism was strong in places like Nalanda and Valabhi." Ibid : P.524.

:62: "अलग अलग वैतरणी" : पृ• 685 ।

:63: Everybody seems to know what city is but no one has given a satisfactory definition". : E.B. Bergal : Urban Sociology : P. 3.

:64: 'Dictionary of Social Sciences' : Gold and Colb : P. 19 .

:65: 'Urban Sociology' : Bergal : P. 11.

:66: 'Urbanization in New Development Countries' : P.3.

:67: 'Our Industrial Urban Civilization' : N.Anderson : P. 1.

:68: "भारतीय सामाजिक समस्याएँ": एम॰ एल॰ गुप्ता एवं डी॰डी॰ शर्मा : पृ॰ 112 ।

:69: वही : पृ॰ 113 ।

:70: देखिए : गुजराती पत्रिका "चित्रलेखा" : मार्च 1987 ।

. . . . .